

खंड

2

सन्धि प्रकरण

इकाई 4

अच् सन्धि – भाग 1

55

इकाई 5

अच् सन्धि – भाग 2

74

इकाई 6

हल् सन्धि– भाग 1

91

इकाई 7

हल् सन्धि – भाग 2

105

इकाई 8

विसर्ग सन्धि

122

खण्ड 2 का परिचय

संस्कृत व्याकरण पाठ्यक्रम का यह द्वितीय खण्ड है। इस खण्ड में 5 इकाइयाँ हैं। खण्ड की ये सभी इकाइयाँ सन्धि प्रकरण से सम्बन्धित हैं। इन इकाइयों में सन्धि प्रकरण के सूत्रों की व्याख्या की गई है। आप जानते हैं कि सन्धियाँ तीन हैं – अच् सन्धि, हल् सन्धि और व्यंजन सन्धि। इस खण्ड की चौथी इकाई में इकोयणचि सूत्र से उपसर्गादृति धातौ तक के सूत्रों की व्याख्या की गई है। इस इकाई के माध्यम से आप यण् सन्धि, गुण सन्धि तथा वृद्धि सन्धि विषयक विषयों का पूर्णतया ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। पाँचवीं इकाई में एङिपररूपम् सूत्र से ऋत्यकः तक के सूत्रों की व्याख्या की गई है। इस इकाई के माध्यम से आप पररूप, पूर्वरूप, दीर्घ, प्रणृह्य संज्ञक सूत्रों का अध्ययन करेंगे। खण्ड की छठीं और सातवीं इकाई व्यंजन सन्धि से सम्बन्धित है। छठीं इकाई में आप स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से शश्छोऽटि तक के सूत्रों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के माध्यम से आप श्चुत्व, ष्टुत्व, जश्त्व, अनुनासिक, परसवर्ण छत्व आदि विधियों को भली-भांति समझेंगे। सातवीं इकाई में आप मोऽनुस्वारः सूत्र से पदान्तात् वा तक के सूत्रों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के माध्यम से आप अनुस्वार, मकार, नकार, अनुनासिक, अनुस्वार आदि विधियों का ज्ञान प्राप्त करेंगे। खण्ड की आठवीं इकाई विसर्ग सन्धि से सम्बन्धित है। इस इकाई में आप विसर्ग सन्धि के सूत्रों यथा विसर्जनीयस्य सः, ससजुषो रुः, हशि च, हलि सर्वेषाम् का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

इस खण्ड की प्रत्येक इकाई में इकाई से सम्बन्धित कठिन शब्दावली दी गई है जिनका अर्थ जानना आपके लिए नितान्त अपेक्षित है। इन शब्दों का अर्थ जानकार आप अपने भाषिक सामर्थ्य में वृद्धि कर सकते हैं। इकाइयों के अन्त में उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गई है। आप इन पुस्तकों का अध्ययन कर सम्बन्धित विषय की और अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

शुभकामनाओं के साथ

इकाई 4 अच् सन्धि – भाग 1

इकाई की रूपरेखा

- 4.0 उद्देश्य
- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 अच् सन्धि – इको यणचि सूत्र से उपसर्गादृति धातौ सूत्रपर्यन्त।
- 4.3 सारांश
- 4.4 शब्दावली
- 4.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 4.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- अच् सन्धि के अन्तर्गत **इको यणचि** (6.1.77) सूत्र से **उपसर्गादृति धातौ** (6.1.91) तक के सूत्रों के सूत्रार्थ एवं उदाहरणादि से परिचित हो सकेंगे।
- यण्, अयादि, गुण और वृद्धि सन्धि के स्थलों में सन्धि एवं सन्धिविच्छेद की प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- एक स्थानी के स्थान पर अनेक आदेशों की प्राप्ति होने पर क्या व्यवस्था होगी? यह भी जान सकेंगे।
- परिभाषा सूत्रों की कार्यविधि को समझ सकेंगे।
- उत्सर्ग-अपवाद नियम को अच्छी प्रकार से समझ सकेंगे।
- सपाद सप्ताध्यायी के प्रति त्रिपादी के असिद्धत्व एवं त्रिपादी में भी परसूत्र के प्रति पूर्वसूत्र के असिद्धत्व का ज्ञान भली-भाँति प्राप्त कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व हम संज्ञाप्रकरणादि का भली-भाँति अध्ययन कर चुके हैं। इस इकाई में हम अच् सन्धि का अध्ययन करेंगे। सन्धि का सामान्य अर्थ है – जोड़ या मेल। पूर्व के अन्तिम वर्ण तथा पर के आदि वर्ण के समीप (अर्धमात्राकालिक व्यवधान) होने पर एवं उन दो वर्णों के मेल से एक या दोनों वर्णों में आने वाले विकार (परिवर्तन) को ही संहिता अथवा सन्धि कहते हैं। सन्धि के स्थलों पर अर्धमात्राकालिक व्यवधान होता है। अचों (स्वरो) की सन्धि अच् सन्धि (स्वर सन्धि) कहलाती है। दो वर्णों का सामीप्य होने पर पूर्व व परवर्ण यदि अच् हों तथा उनकी सन्धि हो रही हो तो वह अच् सन्धि कहलाती है। इस प्रकार इस इकाई में आप यण्, अयादि, गुण आदि सन्धियों का अध्ययन करेंगे।

4.2 अच् सन्धि – इको यणचि सूत्र से उपसर्गादृति धातौ सूत्रपर्यन्त।

सूत्र – इको यणचि(6.1.77)

वृत्ति – इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये। सुधी उपास्य इति स्थिते।

सूत्रार्थ – इक् (इ, उ, ऋ, लृ) के स्थान पर यण् (य्, व्, र्, ल्) आदेश होता है, अच् (स्वरवर्ण) के परे रहते, संहिता के विषय में।

व्याख्या – यह यण् विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'इकः' यह षष्ठी एकवचन, 'यण्' प्रथमा एकवचन तथा 'अचि' सप्तमी एकवचन का पद है। **संहितायाम्** (6.1.72) सूत्र से संहिता पद का अधिकार आ रहा है।

यह सूत्र यण् सन्धि का विधान करता है। यहाँ संहिता (सन्धि) का विषय होने तथा पूर्व में इक् प्रत्याहार के वर्ण (इ, उ, ऋ, लृ) एवं पर में अच् प्रत्याहार के वर्ण (अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ तथा औ) होने से इक् (इ, उ, ऋ, लृ) के स्थान पर यण् (य्, व्, र्, ल्) आदेश होते हैं, जैसे – सुधी+उपास्य में धी का ईकार इक् है एवं उससे परे उपास्यः का उकार अच् है अतः धी के ईकार को यण् आदेश के रूप में (य्, व्, र्, ल्)ये चारों वर्ण प्राप्त होते हैं।

आदेश – जो किसी के स्थान में उसको हटाकर के होता है, उसे आदेश कहते हैं। **(शत्रुवदादेशः)** आदेश शत्रु के समान होता है- शत्रु अपने स्थानी को हटाकर ही स्वतन्त्र रूप से शासन करता है। यहाँ यण् आदेश है।

स्थानी – जिसके स्थान पर आदेश होता है, उसे स्थानी कहते हैं। यहाँ इक् स्थानी है।

सूत्र – तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य(1.1.66)

वृत्ति – सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहतिस्त्वय पूर्वस्य बोध्यम्।

सूत्रार्थ – सप्तम्यन्त के निर्देश से विधीयमान कार्य वर्णों के व्यवधान से रहित पूर्व के स्थान पर होता है।

व्याख्या – यह परिभाषासूत्र है। इस सूत्र में चार पद हैं। 'तस्मिन्' सप्तमी एकवचन, 'इति' अव्ययपद, 'निर्दिष्टे' सप्तमी एकवचन तथा 'पूर्वस्य' षष्ठी एकवचन का पद है।

वस्तुतः इको यणचि से इक् को प्राप्त यणादेश कहाँ हो? इसका निर्धारण यह परिभाषासूत्र करता है क्योंकि परिभाषासूत्रों का कार्य ही विधिसूत्रों की सहायता करना होता है। **अनियमे नियमकारिणी परिभाषा।**

यहाँ सुधी+उपास्यः इस अवस्था में चार अच् सकारोत्तरवर्ती उकार, धकारोत्तरवर्ती ईकार, उपास्य का उकार एवं पकारोत्तरवर्ती आकार तथा तीन इक् सकारोत्तरवर्ती उकार, धकारोत्तरवर्ती ईकार एवं उपास्य का उकार विद्यमान हैं। इनमें से किस इक् को किस अच् के परे रहते यण् हो? इसका निर्धारण प्रस्तुत सूत्र करता है। जिससे अचि इस सप्तम्यन्त निर्देश के कारण उपास्य के उकार रूपी अच् के परे रहते उससे

अव्यवहित पूर्वस्थ धकारोत्तरवर्ती ईकार के स्थान पर यणादेश के रूप में (य्, व्, र्, ल्)ये चारों वर्ण प्राप्त होते हैं।

सूत्र – स्थानेऽन्तरतमः(1.1.50)

वृत्ति – प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात्। सुध् य् उपास्य इति जाते।

सूत्रार्थ – प्रसङ्ग (प्राप्ति) होने पर अत्यन्त सदृश आदेश होता है।

व्याख्या – यह परिभाषासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'स्थाने' सप्तमी एकवचन एवं 'अन्तरतमः' यह प्रथमा एकवचन का पद है। इस सूत्र से जहाँ पर एक स्थानी को अनेक आदेशों की प्राप्ति होती है, तब उन आदेशों में से जो स्थानी के अत्यन्त सदृश होगा उसके स्थान पर वही आदेश होगा।

वर्णों के सादृश्य के चार आधार हैं – स्थानकृत, अर्थकृत, प्रयत्नकृत, मात्राकृत।

सुधी+उपास्य इस स्थिति में तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य की सहायता से इको यणचि से धकारोत्तरवर्ती ईकार रूपी इक् के स्थान पर यण् (य्, व्, र्, ल्)की प्राप्ति हुई। अब एक ईकार के स्थान पर चार यणों में से कौन सा आदेश हो? इसका समाधान प्रस्तुत सूत्र करता है कि यण् के अन्तर्गत ईकार का सदृशतम वर्ण यकार ही है अतः ईकार के स्थान पर यकार आदेश होकर सुध् य्+उपास्य यह स्थिति बनती है।

सूत्र – अनचि च(8.4.47)

वृत्ति – अच्: परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि। इति धकारस्य द्वित्वेन सुध् ध् य् उपास्य इति जाते।

सूत्रार्थ – अच् से परे यर् (हकार को छोड़कर अन्य सभी व्यञ्जनवर्ण) को द्वित्व विकल्प से होता है। यदि यर् से उत्तर अच् न हो तो।

व्याख्या – यह द्वित्वविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'अनचि' यह सप्तमी एकवचन तथा 'च' अव्ययपद है। इसके अतिरिक्त अच्, यर्, द्वे और वा पद की अनुवृत्ति पूर्व सूत्रों से आती है।

कार्य का एकबार होना और एकबार न होना विकल्प कहलाता है। एक को दो हो जाने को द्वित्व कहते हैं। एक बार द्वित्व हो और एक बार न हो, इसे द्वित्व का विकल्प कहते हैं। विकल्प के कारण दो रूप हो जाते हैं तथा दोनों रूप शुद्ध माने जाते हैं।

इस प्रकार सुध्+य्+उपास्य: इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र अनचि च से अच् (सकारोत्तरवर्ती उकार) से परे यर् (धकार) को द्वित्व होकर सुध्+ध्+य्+उपास्य हुआ क्योंकि आगे यकार होने से अच् परे भी नहीं है। जिस पक्ष में यह सूत्र द्वित्व नहीं करेगा उस पक्ष में सुध्+य्+उपास्य यह स्थिति होगी।

सूत्र – झलां जश् झशि(8.4.53)

वृत्ति – स्पष्टम्। इति पूर्वधकारस्य दकारः।

सूत्रार्थ — झल् के स्थान पर जश् होता है झश् परे रहते।

व्याख्या — यह जश्त्वविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'झलाम्' षष्ठी बहुवचन, 'जश्' प्रथमा एकवचन तथा 'झशि' सप्तमी एकवचन का पद है।

झल् प्रत्याहार में वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा ऊष्म वर्ण (श, ष, स् और ह), जश् प्रत्याहार में वर्गों के तृतीय वर्ण (ग, ज, ङ, द, ब) तथा झश् प्रत्याहार में वर्गों के चतुर्थ (घ, झ, ढ, ध, भ) एवं तृतीय वर्ण (ग, ज, ङ, द, ब) आते हैं।

यह सूत्र पूर्व में झल् एवं पर में झश् प्रत्याहार का वर्ण होने पर झल् के स्थान पर जश् आदेश करता है। सुध्+ध्+य्+उपास्यः इस द्वित्वपक्ष के स्थिति में झल् (प्रथम धकार) के स्थान पर, झश् (द्वितीय धकार) के परे रहते स्थानकृत सादृश्य के द्वारा जश् (दकार) हुआ। इस प्रकार पूर्ववर्ती धकार को दकार हुआ।

सूत्र — संयोगान्तस्य लोपः(8.2.23)

वृत्ति — संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात्।

सूत्रार्थ — संयोगान्त (संयोग हो अन्त में जिसके) पद का लोप होता है।

व्याख्या — यह लोपविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'संयोगान्तस्य' यह षष्ठी एकवचन एवं 'लोपः' यह प्रथमा एकवचन का पद है। पदस्य का अधिकार है। सूत्र के संयोग पद का अभिप्राय है कि जब दो या दो से अधिक हल् वर्णों के मध्य अच् वर्ण न हों तो हलोऽनन्तरा संयोगः से उनकी संयोगसंज्ञा हो जाती है। सुध्+ध्+य्+उपास्य इस स्थिति में द्+ध्+य् इन तीन वर्णों के मध्य कोई अच् वर्ण नहीं है अतः इनकी संयोगसंज्ञा हुई और सुद्धय् यह संयोगान्त पद हुआ। वस्तुतः यहाँ पर सुधी+उपास्य इन दो पदों में समास होने के कारण इनसे हुए सुबन्त प्रत्ययों का लोप हो गया है परन्तु प्रत्ययलक्षण के द्वारा इन्हें पद मानकर संयोगान्त पद का लोप प्राप्त होता है परन्तु स्, उ, द, ध, य् अथवा सुद्धय् इस सम्पूर्ण संयोगान्त पद में से यह लोप किसका हो? इसका समाधान अग्रिम सूत्र करता है।

सूत्र — अलोऽन्त्यस्य(1.1.52)

वृत्ति — षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्याल आदेशः स्यात्। इति यलोपे प्राप्ते।

सूत्रार्थ — षष्ठी विभक्ति के निर्देश से होने वाला आदेश अन्त्य अल् के स्थान पर होता है। (इस प्रकार) यलोप के प्राप्त होने पर।

व्याख्या — यह परिभाषासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'अलः' एवं 'अन्त्यस्य' दोनों षष्ठी एकवचन के पद हैं। स्थाने, षष्ठी, निर्दिष्टस्य इन पदों का अध्याहार होता है। अन्य परिभाषासूत्रों के समान ही यह परिभाषासूत्र भी विधिसूत्रों का सहायक होता है अर्थात् पूर्वसूत्र से संयोगान्तपद का लोप प्राप्त होने पर यह सूत्र व्यवस्था करते हुए कहता है कि षष्ठी को निर्देश करके होने वाला आदेश अन्तिम अल् को ही हो। प्रस्तुत सूत्र की सहायता से संयोगान्तस्य लोपः यह सूत्र संयोग के अन्तिम अल् के लोप का विधान करता है। अतः सुद्धय्+उपास्य में संयोग के अन्तिम अल् यकार का लोप प्राप्त हुआ।

वार्तिक – यणः प्रतिषेधो वाच्यः।

अर्थ – संयोगान्त में प्राप्त यण् के लोप का निषेध कहना चाहिए अर्थात् यण् का लोप नहीं होता है।

उदाहरण – सुद्धयुपास्यः। मद्धवरिः। धात्रंशः। लाकृतिः।

व्याख्या – यह वार्तिक **संयोगान्तस्य लोपः** सूत्र पर पड़ा गया है। जिस सूत्र पर जो वार्तिक पड़ा गया है, वह उसके विषय से सम्बन्धित माना जाता है। **अलोऽन्त्यस्य** सूत्र की सहायता से **संयोगान्तस्य लोपः** सूत्र संयोगान्त पद के अन्तिम अल् का लोप करता है, परन्तु प्रस्तुत वार्तिक के कारण अब वह लोप यण् (य्,व्, र्,ल्) वर्णों का नहीं होगा। इस प्रकार सु+द्+ध्+य्+उपास्य इस स्थिति में प्राप्त संयोगान्त अन्त्यवर्ण यकार के लोप का निषेध हो जाता है।

रूपसिद्धि –

सुद्धयुपास्यः/सुध्युपास्यः – सुधी+उपास्यः इस स्थिति में **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** सूत्र की सहायता से **इको यणचि** सूत्र से अच् (उपास्य घटक उकार) के परे रहते उससे अव्यवहित पूर्व धकारोत्तरवर्ती ईकार के स्थान पर यण् प्राप्त हुआ। एक इक् के स्थान पर चार यण् की प्राप्ति होने पर **स्थानेऽन्तरतमः** इस परिभाषासूत्र के निर्देशानुसार स्थानकृत सादृश्य की सहायता से इ के स्थान पर य् हुआ। सुध्+य्+उपास्य इस स्थिति में **अनचि च** इस सूत्र से अच् सकारोत्तरवर्ती उकार से परे यर् धकार है और आगे अच् न होकर यकार है अतः यर् जो धकार उसे द्वित्व हुआ। सुद्+ध्+य्+उपास्य इस स्थिति में संयोगान्त पद सुद्धय् के अन्तिम अल् की **अलोऽन्त्यस्य** सूत्र की सहायता से **संयोगान्तस्य लोपः** इस सूत्र से लोप प्राप्त हुआ। चूँकि यह लोप यण् को प्राप्त हुआ है, अतः उसका निषेध **यणः प्रतिषेधो वाच्यः** इस वार्तिक से हुआ। सुद्+ध्+य्+उपास्य इस स्थिति में **अज्झीनं परेण संयोज्यम्** नियम के अनुसार अच् से रहित हल् को अग्रिमवर्ण के साथ मिला देना चाहिए। अतः हलों को अग्रिम वर्णों के साथ मिलाकर सुद्धयुपास्य यह स्थिति हुई। तत्पश्चात् स्वाद्युत्पत्ति होकर सुद्धयुपास्य+सु इस स्थिति में सकारोत्तरवर्ती उकार का लोप हुआ। तत्पश्चात् स् को रुत्वविसर्ग होकर सुद्धयुपास्यः रूप सिद्ध हुआ। जब विकल्प पक्ष में **अनचि च** सूत्र से धकार को द्वित्व नहीं होगा तो सुध्+य्+उपास्य इस स्थिति में वर्णसम्मेलन, स्वाद्युत्पत्ति एवं रुत्वविसर्ग करके सुध्युपास्यः यह रूप बनेगा।

मद्धवरिः/मध्वरिः – मधु+अरि इस स्थिति में **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** सूत्र की सहायता से **इको यणचि** सूत्र से अच् (अरि घटक अकार) के परे रहते उससे अव्यवहित पूर्व धकारोत्तरवर्ती उकार के स्थान पर यण् प्राप्त हुआ। एक इक् के स्थान पर चार यण् की प्राप्ति होने पर **स्थानेऽन्तरतमः** इस परिभाषासूत्र के निर्देशानुसार स्थानकृत सादृश्य की सहायता से उ के स्थान पर व् हुआ। मध्+व्+अरि इस स्थिति में **अनचि च** सूत्र से अच् मकारोत्तरवर्ती अकार से परे यर् धकार है और आगे अच् न होकर वकार है अतः यर् जो धकार उसे द्वित्व हुआ। मध्+ध्+व्+अरि इस स्थिति में संयोगान्त पद मद्धव् के अन्तिम अल् का **अलोऽन्त्यस्य** सूत्र की सहायता से **संयोगान्तस्य लोपः** सूत्र से लोप प्राप्त हुआ। चूँकि यह लोप यण् को प्राप्त हुआ है अतः उसका निषेध **यणः प्रतिषेधो वाच्यः** वार्तिक से होकर मध्+ध्+व्+अरि इस

स्थिति में **अज्झीनं परेण संयोज्यम्** इस नियम के अनुसार अच् से रहित हल् को अग्रिमवर्ण के साथ मिलाकर मद्धवरि यह स्थिति हुई। तत्पश्चात् स्वाद्युत्पत्ति होकर मद्धवरि+सु इस स्थिति में सकारोत्तरवर्ती उकार का लोप हुआ। तत्पश्चात् स् को रुत्वविसर्ग होकर मद्धवरि: रूप सिद्ध हुआ। जब विकल्प पक्ष में **अनचि च** सूत्र से धकार को द्वित्व नहीं होगा तो मध्+व्+अरि इस स्थिति में वर्णसम्मेलन, स्वाद्युत्पत्ति एवं रुत्वविसर्ग करके मध्वरि: यह रूप बनेगा।

धात्रंशः/धात्रंशः — धातृ+अंश इस स्थिति में **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** की सहायता से **इको यणचि** सूत्र से अच् (अंश घटक अकार) के परे रहते उससे अव्यवहितपूर्व धकारोत्तरवर्ती ऋकार के स्थान पर यण् प्राप्त हुआ। यहाँ एक इक् के स्थान पर चार यण् की प्राप्ति होने पर **स्थानेऽन्तरतमः** इस परिभाषासूत्र के निर्देशानुसार स्थानकृत सादृश्य से ऋ के स्थान पर र् हुआ। धातृ+र्+अंश इस स्थिति में **अनचि च** सूत्र से अच् (धकारोत्तरवर्ती आकार) से परे यर् तकार है और आगे अच् न होकर रकार है अतः यर् (तकार) को द्वित्व हुआ। धातृ+त्+र्+अंश इस स्थिति में संयोगान्त पद धातृत् के अन्तिम अल् का **अलोऽन्त्यस्य** सूत्र की सहायता से **संयोगान्तस्य लोपः** सूत्र से लोप प्राप्त हुआ। चूँकि यह लोप यण् का होना है अतः उसका निषेध **यणः प्रतिषेधो वाच्यः** वार्तिक से होकर धातृ+त्+र्+अंश इस स्थिति में **अज्झीनं परेण संयोज्यम्** नियम के अनुसार हलों का अग्रिमवर्णों के साथ मेल करके धात्रंश यह स्थिति हुई। तत्पश्चात् स्वादिकार्य होकर धात्रंशः रूप सिद्ध हुआ। विकल्प पक्ष में **अनचि च** से जब तकार को द्वित्व नहीं होगा तो धात्रंशः यह रूप बनेगा।

लाकृतिः — लृ+आकृति इस स्थिति में **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** सूत्र की सहायता से **इको यणचि** सूत्र से अच् (आकृति घटक आकार) के परे रहते उससे अव्यवहित पूर्व लृकार के स्थान पर यण् प्राप्त हुआ। एक इक् के स्थान पर चार यण् की प्राप्ति होने पर **स्थानेऽन्तरतमः** के निर्देशानुसार स्थानकृत सादृश्य से लृ के स्थान पर ल् हुआ। ल्+आकृति इस स्थिति में स्वादिकार्य होकर लाकृतिः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — एचोऽयवायावः(6.1.78)

वृत्ति — एचः क्रमादय् अय् आय् आव् एते स्युरचि।

सूत्रार्थ — एच् (ए,ओ,ऐ,औ) के स्थान पर क्रमशः अय्, अव्, आय्, आव् आदेश होते हैं, अच् (स्वरवर्ण) परे रहते।

व्याख्या — यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'एचः' यह षष्ठी एकवचन एवं 'अयवायावः' प्रथमा बहुवचन का रूप है। **इको यणचि** सूत्र से अचि की अनुवृत्ति तथा **संहितायाम्** सूत्र से संहिता पद का अधिकार आ रहा है। एचः पद में स्थानषष्ठी है जिसका अर्थ है कि जो भी कार्य हो एच् के स्थान पर हो। एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत ए, ओ, ऐ, औ ये चार वर्ण आते हैं। अनुवृत्त 'अचि' पद में सप्तमी है जिसके कारण **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** सूत्र की सहायता से एच् को अयादि आदेश अच् के अव्यवहितपूर्व में होगा।

सूत्र — यथासंख्यमनुदेशः समानाम्(1.3.10)

वृत्ति — समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात्। हरये। विष्णवे। नायकः। पावकः।

सूत्रार्थ – समान सम्बन्ध (संख्या की दृष्टि से) वाली विधि संख्या के अनुसार (क्रमानुसार) होती है।

उदाहरण – हरये। विष्णवे। नायकः। पावकः।

व्याख्या – यह परिभाषासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'यथासंख्यम्' एवं 'अनुदेशः' प्रथमा एकवचन तथा 'समानाम्' षष्ठी बहुवचन का पद है। यह परिभाषासूत्र पूर्वसूत्र **एचोऽयवायावः** का उपकारक है। **एचोऽयवायावः** सूत्र से होने वाला आदेश समविधि है, क्योंकि स्थानी एच् (ए,ओ,ऐ,औ) भी चार हैं और अयादि आदेश भी चार हैं। अतः इस परिभाषा के कारण वह विधि क्रमशः अर्थात् पहले ए को पहला अय्, दूसरे ओ को दूसरा अव्, तीसरे ऐ को तीसरा आय् और चौथे औ को चौथा आव् आदेश होगा।

रूपसिद्धि –

हरये – यह पद हरि शब्द के चतुर्थी एकवचन का है। जब हरे+ए ऐसी स्थिति होती है तब एच् (रेफोत्तरवर्ती एकार) से अच् (ए) परे है अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** इस सूत्र की सहायता से **एचोऽयवायावः** सूत्र के द्वारा अव्यवहित अच् परे रहते ए के स्थान पर अय् आदेश हुआ। हर्+अय्+ए इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके हरये रूप सिद्ध हुआ।

विष्णवे – यह पद विष्णु शब्द के चतुर्थी एकवचन का पद है। विष्णो+ए की स्थिति में एच् (णकारोत्तरवर्ती ओकार) से अच् ए परे है अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** सूत्र की सहायता से **एचोऽयवायावः** सूत्र के द्वारा अव्यवहित अच् परे रहते ओ के स्थान पर अव् आदेश हुआ। विष्ण्+अव्+ए इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके विष्णवे रूप सिद्ध हुआ।

नायकः – नै+अकः इस स्थिति में एच् से अच् परे है अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** सूत्र की सहायता से **एचोऽयवायावः** से अव्यवहित अच् परे रहते ऐ के स्थान पर आय् आदेश हुआ। न्+आय्+अक इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर नायकः रूप सिद्ध हुआ।

पावकः – पौ+अकः इस स्थिति में एच् से अच् परे है अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की सहायता से **एचोऽयवायावः** सूत्र से अव्यवहित अच् परे रहते औ के स्थान पर आव् आदेश हुआ। प्+आव्+अक इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर पावकः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – वान्तो यि प्रत्यये(6.1.79)

वृत्ति – यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव आव एतौ स्तः। गव्यम्। नाव्यम्।

सूत्रार्थ – यकारादि (यकार हो आदि में जिसके) प्रत्यय परे रहते ओ को अव् तथा औ को आव् आदेश होता है।

उदाहरण – गव्यम्। नाव्यम्।

व्याख्या — यह अच्-आच् विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'वान्तः' प्रथमा एकवचन तथा 'यि' एवं 'प्रत्यये' ये दोनों सप्तमी एकवचन के पद हैं। सूत्र में पठित पद वान्तः पद का अर्थ है 'वकार हो अन्त में जिसके' है, पूर्वसूत्र एचोऽयवायावः में वकारान्त अच् तथा आच् ये दो आदेश हैं। अतः यहाँ वान्तः का अभिप्राय अच् तथा आच् हुआ। यकारादि प्रत्यय का आदिवर्ण यकार अच् नहीं है अतः इसके परे रहते एचोऽयवायावः सूत्र से अच्-आच् आदेश प्राप्त न होने के कारण प्रस्तुत सूत्र वान्तो यि प्रत्यये से यकारादि प्रत्यय य के परे रहते ओ तथा औ के स्थान पर क्रमशः अच् एवं आच् आदेश होता है।

रूपसिद्धि —

गव्यम् — गो+य इस स्थिति में गकारोत्तरवर्ती ओकार से यत् प्रत्यय घटक यकार के परे रहते वान्तो यि प्रत्यये सूत्र से ओ के स्थान पर अच् आदेश हुआ। ग्+अच्+य इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर गव्यम् रूप सिद्ध हुआ।

नाव्यम् — नौ+य इस स्थिति में (नकारोत्तरवर्ती औकार) से यत् प्रत्यय घटक यकार के परे रहते वान्तो यि प्रत्यये सूत्र से औ के स्थान पर आच् आदेश हुआ। न्+आच्+य इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करने के पश्चात् स्वादिकार्य होकर नाव्यम् रूप सिद्ध हुआ।

वार्तिक — अध्वपरिमाणे च।

अर्थ — गो शब्द से यूति शब्द परे रहते ओकार के स्थान पर अच् आदेश होता है, यदि समुदाय से मार्ग का परिमाण अर्थ ज्ञात हो तो।

उदाहरण — गव्यूतिः।

व्याख्या — गो+यूति इस स्थिति में पूर्वसूत्रों से अच् आदेश अप्राप्त है क्योंकि यहाँ अच् अथवा यकारादि प्रत्यय परे नहीं है। अतः इस प्रयोग की सिद्धि के लिए प्रस्तुत वार्तिक पढा गया। इस वार्तिक से ओ के स्थान पर अच् आदेश हुआ।

रूपसिद्धि —

गव्यूतिः — गो+यूति इस स्थिति में अध्वपरिमाणे च इस वार्तिक से गकारोत्तरवर्ती ओकार से यूति शब्द के परे रहते ओ के स्थान पर अच् आदेश हुआ। ग्+अच्+यूति इस स्थिति में वर्णसम्मेलन एवं स्वादिकार्य करके गव्यूतिः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — अदेङ् गुणः(1.1.2)

वृत्ति — अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात्।

सूत्रार्थ — अ, ए और ओ की गुणसंज्ञा होती है।

व्याख्या — यह गुणसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। अत्, एङ् एवं गुणः तीनों प्रथमा एकवचन के पद हैं। इस सूत्र के बाद सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में गुण शब्द से अ, ए, ओ का ही व्यवहार होता है।

सूत्र — तपरस्तत्कालस्य(1.1.70)

वृत्ति – तः परो यस्मात् स च तात् परश्चोच्चार्यमाणसमकालस्यैव संज्ञा स्यात् ।

सूत्रार्थ – त् जिससे परे तथा त् से जो परे है वह अपने समकाल वाले वर्ण की संज्ञा होता है ।

व्याख्या – इस सूत्र में दो पद हैं। 'तपरः' प्रथमा एकवचन तथा 'तत्कालस्य' षष्ठी एकवचन का पद है। स्व पद की अनुवृत्ति आती है। **अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः** सूत्र द्वारा अण् अपने तथा अपने सवर्णों के ग्राहक होते हैं। यह सूत्र उसका अपवाद है। तपरयुक्त वर्ण अपना तथा अपने काल के सदृशकाल वाले सवर्णों का ही ग्राहक होगा अन्य का नहीं। यही **तपरस्तत्कालस्य** सूत्र का तात्पर्य है।

जैसे **अदेङ्गुणः** सूत्र में (अत्+एङ्+गुणः) अकार के बाद त् है तथा एङ् के पूर्व त् है। इस प्रकार के तकार होने को तपर होना भी कहते हैं। अकार के बाद तपर तथा एङ् से पूर्व तपर होने के कारण अ तथा एङ् (ए.ओ) अण् के अन्तर्गत होते हुए भी अपने समकाल उच्चरित वर्णों का ही बोध करायेंगे। अतः अ से द्वस्व अकारमात्र का तथा एङ् अर्थात् ए और ओ से केवल दीर्घ एकार एवं ओकार का बोध होकर **अदेङ् गुणः** सूत्र का अर्थ होगा— 'द्वस्व अकार, दीर्घ एकार तथा दीर्घ ओकार की गुणसंज्ञा होती है' ।

सूत्र – आद्गुणः(6.3.87)

वृत्ति – अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात् । उपेन्द्रः । गङ्गोदकम्

सूत्रार्थ – अवर्ण से अच् परे रहते पूर्व और पर दोनों के स्थान पर गुणरूप एकादेश होता है ।

उदाहरण – उपेन्द्रः । गङ्गोदकम् ।

व्याख्या – यह गुणविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'आद्' पंचमी एकवचन तथा 'गुणः' प्रथमा एकवचन का पद है। अचि, पूर्वपरयोः और एकः इन पदों की अनुवृत्ति आती है। एकादेश का अभिप्राय है दो या दो से अधिक वर्णों के स्थान पर एक वर्णरूप आदेश।

जैसे उप+इन्द्र इस स्थिति में पकारोत्तरवर्ती अवर्ण से परे इन्द्रघटक इकार अच् है, अतः पूर्वपर (अ+इ) के स्थान पर गुणरूप एकादेश एकार होकर उपेन्द्र सिद्ध हुआ।

सूत्रार्थ के अनुसार तो अवर्ण से कोई भी अच् वर्ण परे हो तो गुण होगा परन्तु इस सूत्र के दो अपवाद सूत्र हैं **अकः सवर्णे दीर्घः** तथा **वृद्धिरेचि**। अतः अवर्ण से अवर्ण परे होने पर गुण को बाधकर दीर्घ तथा अवर्ण से एच् परे होने पर वृद्धि होगी। जिसके कारण अवर्ण से इ, उ, ऋ और लृ के परे होने पर ही पूर्वपर के स्थान पर गुणरूप एकादेश होगा।

रूपसिद्धि –

उपेन्द्रः – उप+इन्द्र इस स्थिति में अवर्ण (पकारोत्तरवर्ती अकार) से परे अच् (इन्द्र घटक इकार) है अतः **आद्गुणः** सूत्र से पूर्वपर (अ+इ) के स्थान पर एकार आदेश हुआ। उप+ए+इन्द्र इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर उपेन्द्रः यह रूप सिद्ध हुआ।

गङ्गोदकम् — गङ्गा+उदक इस स्थिति में अवर्ण गकारोत्तरवर्ती आकार से परे अच् उदक घटक उकार है अतः **आदगुणः** सूत्र से पूर्वपर (आ+उ) के स्थान पर ओकार आदेश हुआ। गङ्ग+ओ+दक इस स्थिति में वर्णसम्मेलन होकर स्वादिकार्य होकर गङ्गोदकम् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — उपदेशेऽनुनासिक इत्(1.3.2)

वृत्ति — उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात्। प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। लण् सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा।

सूत्रार्थ — उपदेशावस्था में अनुनासिक अच् की इत्संज्ञा होती है। पाणिनीय परम्परा के आचार्यों की प्रतिज्ञा से अनुनासिक स्वरों का ज्ञान होता है। लण् सूत्रस्थ अवर्ण के साथ उच्चारित र् वर्ण र् तथा ल् की बोधक संज्ञा है।

व्याख्या — यह इत्संज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। यह अनुनासिक अचों की इत्संज्ञा करता है। इस सूत्र में चार पद हैं। 'उपदेशे' यह सप्तमी एकवचन, 'अच्', 'अनुनासिक' एवं 'इत्' ये प्रथमा एकवचन के पद हैं। इत्संज्ञा का फल **तस्य लोपः** सूत्र से इत्संज्ञकवर्ण का लोप होना है।

महामुनि पाणिनि ने अपने व्याकरण में अनुनासिक अचों पर (अँ) इस प्रकार का चिह्न किया था। परन्तु समय के साथ वे अनुनासिक पाठ नष्ट हो गये। अतः अब अनुनासिक जानने की व्यवस्था गुरु परम्परा के उपदेश के अनुसार समझना चाहिए। अभिप्राय यह है कि परम्परा में जिन अचों को अनुनासिक माना गया है उन्हीं को स्वीकार करना चाहिए।

सूत्र — उरण् रपरः(1.1.51)

वृत्ति — ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम्। तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते। कृष्णर्द्धिः। तवल्कारः।

सूत्रार्थ — ऋ तीस प्रकार का होता है ऐसा **अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः** सूत्र में कहा जा चुका है। अतः ऋ के जो तीस प्रकार हैं उनके स्थान पर होने वाला जो अण् वह रपर (र प्रत्याहार के कारण लपर भी) होकर प्रवृत्त होगा।

उदाहरण — कृष्णर्द्धिः।

व्याख्या — यह रपर तथा लपर विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'उः' यह ऋ शब्द के षष्ठी एकवचन का तथा 'अण्' एवं 'रपरः' ये दोनों प्रथमा एकवचन के पद हैं। प्रस्तुत सूत्र में अण् प्रत्याहार से अ, इ और उ का ग्रहण होता है। अतः ऋ और लृ के स्थान पर जहाँ कहीं पर ये आदेश होंगे वे अर्, अल्, आर्, आल्, इर्, इल्, उर्, उल् के रूप में ही प्रवृत्त होगा।

रूपसिद्धि —

कृष्णर्द्धिः — कृष्ण+ऋद्धि इस स्थिति में **आदगुणः** से अवर्ण (णकारोत्तरवर्ती अकार) से अच् (ऋद्धि के ऋकार) के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर गुणरूप एकादेश के रूप में (स्थानेऽन्तरतमः की सहायता से) अ प्राप्त हुआ। अकार अण् प्रत्याहार के अन्तर्गत

आता है अतः प्रस्तुत सूत्र **उरण् रपरः** से वह रपर अर्थात् अ से परे र होकर (अर्) प्रवृत्त हुआ। कृष्ण्+अर्+द्धि इस स्थिति में स्वादिकार्य होकर कृष्णद्धिः रूप सिद्ध हुआ।

तवल्कारः — तव+लृकार इस स्थिति में **आद्गुणः** से अवर्ण (वकारोत्तरवर्ती अकार) से अच् (लृ) के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर गुणरूप एकादेश के रूप में (स्थानेऽन्तरतमः की सहायता से) अ प्राप्त हुआ। अकार अण् प्रत्याहार के अन्तर्गत आता है अतः **उरण् रपरः** सूत्र से वह लपर अर्थात् अ से परे ल होकर (अल्) प्रवृत्त हुआ। तव्+अल्+कार इस स्थिति में स्वादिकार्य होकर तवल्कारः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – लोपः शाकल्यस्य(8.3.19)

वृत्ति — अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे।

सूत्रार्थ — अवर्ण पूर्व में हो जिसके ऐसे पदान्त यकार तथा वकार का विकल्प से लोप होता है, अश् प्रत्याहार के परे रहते।

व्याख्या — यह लोपविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'लोपः' प्रथमा एकवचन तथा 'शाकल्यस्य' षष्ठी एकवचन का पद है। अपूर्वस्य, व्या, पदान्तयोः, अशि पद अनुवृत्त हैं। इस सूत्र में शाकल्यस्य का अभिप्राय है शाकल्य के मत में। पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती वैयाकरणों का मत उनके नामोल्लेखपूर्वक किया है। यहाँ पर शाकल्य के मत में तो लोप है परन्तु पाणिनि के मत में नहीं। अतः दोनों के मत को प्रमाण मानकर आचार्यों ने इस सूत्र के कार्य को विकल्प से मान लिया। इस सूत्र का उदाहरण अग्रिम सूत्र में है।

सूत्र – पूर्वत्राऽसिद्धम्(8.2.1)

वृत्ति — सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्वम् प्रति परं शास्त्रमसिद्धम्। हर इह, हरयिह। विष्ण इह, विष्णविह।

सूत्रार्थ — सपादसप्ताध्यायी (सवा सात अध्याय) के प्रति त्रिपादी (शेष तीन पाद) के सूत्र असिद्ध होते हैं और त्रिपादी सूत्रों में भी पूर्वशास्त्र (पूर्वसूत्र) के प्रति परशास्त्र असिद्ध होता है।

उदाहरण — हर इह, हरयिह। विष्ण इह, विष्णविह।

व्याख्या — यह अधिकारसूत्र है। यह सूत्र अष्टाध्यायी के अष्टमाध्याय के द्वितीयपाद का प्रथमसूत्र है। इस सूत्र से पहले के सात अध्याय तथा एक पाद को सपाद सप्ताध्यायी तथा इस सूत्र से लेकर शेष तीन पाद को त्रिपादी कहा जाता है। इस सूत्र के अनुसार सपाद सप्ताध्यायी के प्रति त्रिपादी के सूत्रों से विहित कार्य असिद्ध (न हुए के समान) माने जायेंगे। त्रिपादी में भी पूर्वशास्त्र (सूत्र) के प्रति परशास्त्र असिद्ध होता है। अतः हर इह इस प्रयोग में त्रिपादी शास्त्र **लोपः शाकल्यस्य** द्वारा कृत यकार लोप कार्य सपाद सप्ताध्यायी शास्त्र **आद्गुणः** की दृष्टि में नहीं हुए के समान है।

रूपसिद्धि —

हर इह, हरयिह — हरे+इह इस स्थिति में **एचोऽयवायावः** सूत्र से अच् परे रहते एकार के स्थान पर अय् आदेश हुआ। हर्+अय्+इह इस स्थिति में **लोपः शाकल्यस्य**

सूत्र से अवर्ण से परे पदान्त यकार का विकल्प से लोप हुआ। हर+इह इस अवस्था में अवर्ण (रकारोत्तरवर्ती अकार) से परे अच् (इह घटक इकार) परे रहते पूर्वपर के स्थान में **आद्गुणः** सूत्र से गुण प्राप्त होता है। परन्तु **पूर्वत्राऽसिद्धम्** से सपादी गुणकार्य के प्रति त्रिपादी यकार लोपकार्य असिद्ध हो गया। अतः अवर्ण से परे अच् नहीं मिला क्योंकि मध्य में यकार का व्यवधान प्राप्त हुआ। अतः गुणरूप एकादेश की प्रवृत्ति नहीं हुई तथा हर इह सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में यकारलोप नहीं होगा उस पक्ष में अय् आदेश के बाद हर+अय्+इह इस स्थिति में वर्णसम्मेलन होकर हरयिह रूप सिद्ध होगा।

विष्ण इह, विष्णविह — विष्णो+इह इस स्थिति में **एचोऽयवायावः** सूत्र से अच् परे रहते एकार के स्थान पर अय् आदेश हुआ। विष्ण्+अव्+इह इस स्थिति में **लोपः शाकल्यस्य** सूत्र से अवर्ण से परे पदान्त वकार का विकल्प से लोप हुआ। विष्ण+इह इस अवस्था में अवर्ण (णकारोत्तरवर्ती अकार) से परे अच् (इह घटक इकार) के परे रहते पूर्वपर के स्थान में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त होता है। परन्तु **पूर्वत्राऽसिद्धम्** सूत्र से सपादी गुणकार्य के प्रति त्रिपादी वकार लोपकार्य असिद्ध हो गया। अतः मध्य में वकार का व्यवधान होने से अवर्ण से परे अच् नहीं मिला। अतः गुणरूप एकादेश की प्रवृत्ति नहीं हुई तथा विष्ण इह सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में यकारलोप नहीं होगा उस पक्ष में अव् आदेश के बाद विष्ण्+अव्+इह इस स्थिति में वर्णसम्मेलन होकर विष्णविह रूप सिद्ध होगा।

सूत्र — वृद्धिरादैच्(1.1.1)

वृत्ति — आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात्।

सूत्रार्थ — आ और ऐच् (ऐ,औ) की वृद्धिसंज्ञा होती है।

व्याख्या — यह वृद्धिसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। वृद्धि, आत् और ऐच् ये तीनों पद प्रथमा एकवचन के हैं। **अदेङ् गुणः** के समान ही इस सूत्र में भी तपरकरण है परन्तु वहाँ पर तपर पूर्व एवं पर दोनों के लिए था। इस सूत्र में तपरकरण केवल ऐच् के लिए है, आ के लिए नहीं। आकार अण् प्रत्याहार के अन्तर्गत नहीं आता है अतः वह अपने सवर्णों का बोध नहीं करा सकता है। अतः उसके साथ तपर करके सवर्णबोध का निषेध करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। यहाँ पर ऐच् के ग्रहण से प्लुत सवर्णों का ग्रहण न हो, इस कारण से तपर ग्रहण किया गया है। इस सूत्र के बाद सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में जहाँ कहीं भी वृद्धि पद व्यवहृत है वहाँ पर आ, ऐ और औ उपस्थित होंगे।

सूत्र — वृद्धिरेचि(6.1.88)

वृत्ति — आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। गुणापवादः। कृष्णौकत्वम्। गङ्गौघः। देवैश्वर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम्।

सूत्रार्थ — अवर्ण से ऐच् परे रहते पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश होता है।

उदाहरण — कृष्णौकत्वम्। गङ्गौघः। देवैश्वर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम्।

व्याख्या — यह वृद्धिविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'वृद्धिः' प्रथमा एकवचन तथा 'एचि' यह सप्तमी एकवचन का पद है। आत्, पूर्वपरयोः, एकः इन पदों की अनुवृत्ति आती है। यह सूत्र **आदगुणः** से होने वाले गुणादेश का अपवाद है। जिस सूत्र का विषय व्यापक हो वह उत्सर्गशास्त्र तथा जिसका विषय अल्प हो वह अपवादशास्त्र होता है।

रूपसिद्धि —

कृष्णैकत्वम् — कृष्ण+एकत्व इस स्थिति में **वृद्धिरेचि** सूत्र से अवर्ण (णकारोत्तरवर्ती अकार) से एच् (एकत्व घटक एकार) के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश ऐ हुआ। कृष्ण्+ऐ+कत्व इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर कृष्णैकत्वम् रूप सिद्ध हुआ।

गङ्गौघः — गङ्गा+ओघ इस स्थिति में **वृद्धिरेचि** सूत्र से अवर्ण (गकारोत्तरवर्ती आकार) से एच् (ओघ घटक ओकार) के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश औ हुआ। गङ्ग्+औ+घ इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर गङ्गौघः रूप सिद्ध हुआ।

देवैश्वर्यम् — देव+ऐश्वर्य इस स्थिति में **वृद्धिरेचि** सूत्र से अवर्ण (वकारोत्तरवर्ती अकार) से एच् (ऐश्वर्य घटक एकार) के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश ऐ हुआ। देव्+ऐ+श्वर्य इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर देवैश्वर्यम् रूप सिद्ध हुआ।

कृष्णौत्कण्ठ्यम् — कृष्ण+औत्कण्ठ्य इस स्थिति में **वृद्धिरेचि** से अवर्ण (णकारोत्तरवर्ती अकार) से एच् (औत्कण्ठ्य घटक औकार) के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश औ हुआ। कृष्ण्+औ+त्कण्ठ्य इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर कृष्णौत्कण्ठ्यम् रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — एत्येधत्यूट्सु(6.1.89)

वृत्ति — अवर्णादेजाद्योरेत्येधत्योरुटि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। पररूपगुणापवादः। उपैति। उपैधते। प्रष्टौहः। एजाद्योः किम्? उपेतः। मा भवान् प्रेदिधत्।

सूत्रार्थ — अवर्ण से परे यदि एच् आदि वाली इण् तथा एध् धातु हो अथवा ऊट् हो तो पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश होता है।

उदाहरण — उपैति। उपैधते। प्रष्टौहः।

व्याख्या — यह वृद्धिविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में एकमात्र पद सप्तमी बहुवचन का है। यह सूत्र **एङि पररूपम्** तथा **आदगुणः** सूत्रों का अपवाद है। इस सूत्र में एजादि धातु कहने के कारण उप+इतः इस स्थिति में वृद्धि नहीं होगी। यदि इस सूत्र में एजादि नहीं कहते तो यहाँ पर भी वृद्धि हो जाती। प्र+इदिधत् यहाँ पर भी एजादि नहीं कहने पर वृद्धि होने लगती। इन दोनों प्रयोगों में **आदगुणः** से गुण होकर उपेतः तथा प्रेदिधत् सिद्ध होते हैं।

रूपसिद्धि —

उपैति — उप+एति इस स्थिति में अवर्ण (पकारोत्तरवर्ती अकार) से परे (इण् गतौ धातु के लट् लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन का पद) एति घटक एकार है, अतः **एत्येधत्यूत्सु** सूत्र से पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। उप+ऐ+ति इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके उपैति रूप सिद्ध हुआ।

उपैधते — उप+एधते इस स्थिति में अवर्ण (पकारोत्तरवर्ती अकार) से परे (एध् वृद्धौ धातु के लट् लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन का पद) एधते घटक एकार है, अतः **एत्येधत्यूत्सु** से पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। उप+ऐ+धते इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके उपैधते रूप सिद्ध हुआ।

प्रष्ठौहः — प्रष्ठ+ऊह इस स्थिति में अवर्ण (ठकारोत्तरवर्ती अकार) से परे (ऊट् धातु सम्बन्धी) ऊह घटक ऊकार है, अतः **एत्येधत्यूत्सु** से पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। प्रष्ठ+औ+ह इस स्थिति में वर्णसम्मेलन एवं स्वादिकार्य होकर के प्रष्ठौहः रूप सिद्ध हुआ।

वार्तिक — अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम् ।

अर्थ — अक्ष शब्द से ऊहिनी शब्द के परे होने पर भी पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हो, ऐसा कहना चाहिए।

उदाहरण — अक्षौहणी सेना।

रूपसिद्धि —

अक्षौहणी — अक्ष+ऊहिनी इस स्थिति में गुण की प्राप्ति थी जिसे बाधकर प्रस्तुत वार्तिक **अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्** से अक्ष शब्द के क्षकारोत्तरवर्ती अकार से परे ऊहिनी घटक उकार है, अतः पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। अक्ष+औ+हिनी इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा णत्व होकर अक्षौहिणी रूप सिद्ध होता है।

वार्तिक — प्रादूहोढोढयेषैष्येषु ।

अर्थ — प्र शब्द से ऊह, ऊढ, ऊढि, एष तथा एष्य शब्दों के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश होता है।

उदाहरण — प्रौहः। प्रौढः। प्रौढिः। प्रैषः। प्रैष्यः।

रूपसिद्धि —

प्रौहः — प्र+ऊह इस स्थिति में **आदगुणः** सूत्र से गुण प्राप्त है जिसे बाधकर प्रस्तुत वार्तिक **प्रादूहोढोढयेषैष्येषु** से प्र उपसर्ग से परे ऊह शब्द है तो पूर्वपर (अ+ऊ) के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। प्र+औ+ह इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर प्रौहः रूप सिद्ध हुआ।

प्रौढः — प्र+ऊढ इस स्थिति में **आदगुणः** सूत्र से गुण प्राप्त है जिसे बाधकर प्रस्तुत वार्तिक **प्रादूहोढोढयेषैष्येषु** से प्र उपसर्ग से परे ऊढ शब्द है तो पूर्वपर (अ+ऊ) के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। प्र+औ+ढ इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर प्रौढः रूप सिद्ध हुआ।

प्रौढि: — प्र+ऊढि इस स्थिति में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त है जिसे बाधकर प्रस्तुत वार्तिक **प्रादूहोढोढयेषैष्येषु** से प्र उपसर्ग से परे ऊढि शब्द है तो पूर्वपर (अ+ऊ) के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। प्र+औ+ढि इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर प्रौढि: रूप सिद्ध हुआ।

प्रैष: — प्र+एष इस स्थिति में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त है जिसे बाधकर प्रस्तुत वार्तिक **प्रादूहोढोढयेषैष्येषु** से प्र उपसर्ग से परे एष शब्द है तो पूर्वपर (अ+ए) के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। प्र+ऐ+ष इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर प्रैष: रूप सिद्ध हुआ।

प्रैष्य: — प्र+एष्य इस स्थिति में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त है जिसे बाधकर प्रस्तुत वार्तिक **प्रादूहोढोढयेषैष्येषु** से प्र उपसर्ग से परे एष्य शब्द है तो पूर्वपर (अ+ए) के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश हुआ। प्र+ऐ+ष्य इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर प्रैष्य: रूप सिद्ध हुआ।

वार्तिक — ऋते च तृतीयासमासे। सुखेन ऋतः सुखार्तः। तृतीयेति किम्? परमर्तः।

अर्थ — तृतीयासमास में अवर्ण से ऋत शब्द के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है। तृतीया समास होने पर ही यह वृद्धि एकादेश होता है, यदि ऐसा नहीं कहते तो परमर्तः (परम+ऋत) इस कर्मधारय समस्तपद में भी वृद्धि होने लगती। यहाँ वृद्धि न होने से गुण हुआ है।

उदाहरण — सुखेन ऋतः सुखार्तः।

रूपसिद्धि —

सुखार्तः — सुख+ऋत इस स्थिति में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त है, जिसे बाधकर **ऋते च तृतीयासमासे** इस वार्तिक से तृतीया समास में अवर्ण (खकारोत्तरवर्ती अकार) से परे ऋत घटक ऋकार है अतः पूर्वपर के स्थान पर वृद्धि **उरण् रपरः** सूत्र से रपर होकर आर् हुआ। सुख्+आर्+त इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर सुखार्तः रूप सिद्ध हुआ।

वार्तिक — प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे।

अर्थ — प्रवत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण तथा दश इन छः शब्दों परे ऋण शब्द रहे तो पूर्वपर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है।

उदाहरण — प्रार्णम्, वत्सतरार्णम्।

रूपसिद्धि —

प्रार्णम् — प्र+ऋण इस स्थिति में गुण प्राप्त था जिसे बाधकर **प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे** इस वार्तिक से अ+ऋ के स्थान पर वृद्धि हुई। प्र+आर्+ण इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर प्रार्णम् रूप सिद्ध हुआ।

वत्सतरार्णम् — वत्सतर+ऋण इस स्थिति में गुण प्राप्त था जिसे बाधकर **प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे** इस वार्तिक से अ+ऋ के स्थान पर वृद्धि हुई। वत्सतर+आर्+ण इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर वत्सतरार्णम् रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — उपसर्गाः क्रियायोगे(1.4.59)

वृत्ति — प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः। प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उद् अभि प्रति परि उप — एते प्रादयः।

सूत्रार्थ — क्रिया के योग में प्रादियों की उपसर्गसंज्ञा होती है।

व्याख्या — यह उपसर्गसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'उपसर्गाः' प्रथमा बहुवचन तथा 'क्रियायोगे' सप्तमी एकवचन का पद है। यह सूत्र **प्राग्रीश्वरान्निपाताः** सूत्र के अधिकार में पठित है अतः प्रादियों की निपातसंज्ञा भी होती है। निपातसंज्ञा का प्रयोजन अव्यय बनाना है। पाणिनि विरचित गणपाठ के अन्तर्गत प्रादिगण का पाठ है।

सूत्र — भूवादयो धातवः(1.3.1)

वृत्ति — क्रियावाचिनो भवादयो धातुसंज्ञाः स्युः।

सूत्रार्थ — क्रिया के वाचक भू आदि की धातुसंज्ञा होती है।

व्याख्या — यह धातुसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'भूवादयः' तथा 'धातवः' ये दोनों प्रथमा बहुवचन के पद हैं। यहाँ भू आदि से केवल भ्वादिगण ही नहीं समझना चाहिए, अपितु सम्पूर्ण धातुपाठ का ग्रहण करना चाहिए।

सूत्र — उपसर्गादृति धातौ(6.1.91)

वृत्ति — अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। प्राच्छति।

सूत्रार्थ — अवर्णान्त उपसर्ग से परे ऋकारादि धातु हो तो पूर्वपर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है।

उदाहरण — प्राच्छति।

व्याख्या — यह वृद्धिविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। उपसर्गात् पंचमी एकवचन तथा ऋति और धातौ सप्तमी एकवचन के पद हैं।

रूपसिद्धि —

प्राच्छति — प्र+ऋच्छति इस स्थिति में अवर्णान्त उपसर्ग है प्र एवं उससे परे ऋकारादि धातु ऋच्छ है अतः **उपसर्गादृति धातौ** सूत्र से पूर्वपर (अ+ऋ) के स्थान पर वृद्धि (रपर होकर आर्) हुई। प्र+आर्+च्छति इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके प्राच्छति रूप सिद्ध हुआ।

बोध प्रश्न

1. समुचित विकल्प का चयन कीजिए—

- i) सुद्धयुपास्यः का वैकल्पिक रूप है –
 (क) सुध्युपास्यः (ख) सुद्युपास्यः (ग) सुद्धयुपास्यः (घ) सुध्युपास्यः
- ii) स्थानेऽन्तरतमः सूत्र है –
 (क) संज्ञासूत्र (ख) विधिसूत्र (ग) परिभाषासूत्र (घ) अधिकारसूत्र
- iii) द्वित्वविधायक सूत्र है –
 (क) अनचि च (ख) स्थानेऽन्तरतमः (ग) अलोऽन्त्यस्य
 (घ) झलां जश् झशि
- iv) यण् के प्रसङ्ग में लाकृतिः का विच्छेद होगा –
 (क) ल+आकृतिः (ख) ला+आकृतिः (ग) ला+कृतिः
 (घ) लृ+आकृतिः
- v) वृद्धिरेचि अपवाद है –
 (क) यण् का (ख) गुण का (ग) दीर्घ का (घ) अयादि का

2. सत्य अथवा असत्य कथन हेतु क्रमशः सही (✓) या गलत (×) चिह्न लगाइए –

- i) सप्तमीनिर्देश से विधीयमान कार्य व्यवहितपूर्व के स्थान पर होता है— ()
- ii) मधु+अरिः के दो रूप सम्भव हैं— ()
- iii) एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत 4 वर्ण आते हैं— ()
- iv) अध्वपरिमाणे च का उदाहरण “गव्यम्” है— ()
- v) प्रत्याहार सूत्रों में पठित ऋकार के सवर्णियों की सङ्ख्या 18 है— ()

3. समुचित उत्तर द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए –

- i) प्रसङ्ग होने पर आदेश होता है।
- ii) समसम्बन्धी विधि यथासङ्ख्य होते हैं।
- iii) अलोऽन्त्यस्य सूत्र है।
- iv) ऋते च तृतीया समासे का उदाहरण है।
- v) प्रार्णम् में सन्धि है।

अभ्यास प्रश्न

- इको यणचि सूत्रस्थ पदों की सङ्ख्या एवं विभक्तियाँ बताइए।
- परिभाषासूत्रों की कार्यविधि को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
- तपरकरण क्या है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
- वृद्धिरादैच् सूत्र की व्याख्या कीजिए।
- प्रादि कितने और कौन-कौन से हैं? बताइए।

4.3 सारांश

अच् सन्धि के अन्तर्गत इस इकाई में आपने **इको यणचि** (6.1.77) सूत्र से लेकर **उपसर्गादृति धातौ** (6.1.91) तक के सूत्रों का विधिवत् अध्ययन किया। जिसके फलस्वरूप हमें अच् सन्धि के मुख्य भेदों का ज्ञान हुआ। अच् सन्धि का अभिप्राय स्वरों के मध्य होने वाली सन्धि है। जिनमें पूर्व एवं पर दोनों स्थानी अच् होते हैं। इस इकाई में आपने यण्, अयादि, गुण, दीर्घ तथा वृद्धि सन्धि का अध्ययन किया। सन्धिस्थलों में भी उत्सर्ग अपवाद नियम के अनुसार ही सूत्रों की प्रवृत्ति को जाना। कतिपय सन्धिस्थलों में विकल्प व्यवस्था किस प्रकार से होती है? इसका भी ज्ञान प्राप्त किया। साथ ही सपाद सप्ताध्यायी के प्रति त्रिपादी के एवं त्रिपादी में भी परसूत्र के प्रति पूर्वसूत्र के असिद्धत्व का प्रक्रियात्मक ज्ञान भी प्राप्त किया।

4.4 शब्दावली

आदेश — जो किसी के स्थान में उसको हटा करके होता है, उसे आदेश कहते हैं। **(शत्रुवदादेशः)** आदेश शत्रु के समान होता है। शत्रु अपने स्थानी को हटाकर ही स्वतन्त्र रूप से शासन करता है।

स्थानी — जिसके स्थान पर आदेश होता है, उसे स्थानी कहते हैं।

संहिता— वर्णों की अत्यन्त समीपता ही संहिता कहलाती है। पाणिनि ने **परः सन्निकर्षः संहिता** इस सूत्र से संहितासंज्ञा का विधान किया है।

अव्यवहित — अर्थात् व्यवधान रहित। जिन दो वर्णों (पूर्व व पर) के बीच कार्य हो रहा हो, उनके बीच किसी अन्य वर्ण का नहीं होना ही अव्यवहित होना है।

परिभाषा — परिभाषासूत्रों का कार्य विधिसूत्रों के कार्य में सहायता करना होता है। **अनियमे नियमकारिणी परिभाषा**। सुधी+उपास्य में इको यणचि से यणादेश किस इक् के स्थान पर हो इसका निर्धारण करने के लिए **तस्मिन्निति**। इस परिभाषासूत्र की सहायता से इको यणचि का अर्थ इस प्रकार हो जाता है संहिता के विषय में, इक् के स्थान पर यण् आदेश तभी होता है जब वह इक् अच् के अव्यवहित पूर्व में हो तो।

संयोग — दो या दो से अधिक हल् वर्णों के मध्य में अच् न रहे तो उनकी संयोगसंज्ञा होती है। संयोगसंज्ञा का विधायक सूत्र **हलोऽनन्तराः संयोगः** है।

4.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी, गोरखपुर, गीताप्रेस।

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या. गोविन्दाचार्य, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, चौखम्भा सुरभारती।

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या. शास्त्री, धरानन्द, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास।

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या. शास्त्री, भीमसेन. लघुसिद्धान्तकौमुदी. (भाग-1-6), दिल्ली, भैमी प्रकाशन।

शास्त्री, चारुदेव, व्याकरण चन्द्रोदय, (भाग-1-3), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

वरदराजाचार्य, सम्पा. एवं हिन्दी सिंह, सत्यपाल, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, शिवालिक पब्लिकेशन।

Apte, V.S. *The Students' Guide to Sanskrit Composition*. Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

Kale, M.R. *Higher Sanskrit Grammar*. MLBD, Delhi.

Kanshi Ram, *Laghusiddhantkaumudi*. (Vol. 1-3). MLBD. Delhi, 2009.

Ballantyne, James R. *Laghusiddhantkaumudi*. Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

4.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1. i. क, ii. ग, iii. क, iv. घ, v. ख
2. i. सत्य, ii. असत्य, iii. सत्य, iv. असत्य, v. असत्य
3. i. सदृशतम, ii. यथासङ्ख्य अथवा सङ्ख्या के अनुसार, iii. परिभाषासूत्र, iv. सुखार्तः, v. वृद्धि

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 5 अच् सन्धि – भाग 2

इकाई की रूपरेखा

- 5.0 उद्देश्य
- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 अच् सन्धि – एङि पररूपम् सूत्र से ऋत्यकः सूत्र पर्यन्त ।
- 5.3 सारांश
- 5.4 शब्दावली
- 5.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 5.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- अच् सन्धि के एङि पररूपम् (6.1.94) सूत्र से लेकर ऋत्यकः (6.1.128) तक के सूत्रों के सूत्रार्थ एवं उदाहरणादि से परिचित हो सकेंगे।
- पररूप, पूर्वरूप और प्रकृतिभाव के स्थलों में सन्धि एवं सन्धिविच्छेद करना तथा उसकी प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- विशेषकर सन्धियोग्य स्थलों में सन्धिकार्य के अभाव के स्थलों से परिचित हो सकेंगे।
- एक स्थानी के स्थान पर अनेक आदेशों की प्राप्ति होने पर क्या व्यवस्था होगी? यह भी जान सकेंगे।
- टि, प्रगृह्य एवं निपात आदि संज्ञाओं से भी परिचित हो सकेंगे।
- परिभाषासूत्रों की कार्यविधि को समझ सकेंगे।
- उत्सर्ग-अपवाद नियम को और अच्छी प्रकार से जान सकेंगे।
- अलोऽन्त्यस्य, अनेकाल् शित् सर्वस्य एवं ङिच्च इन परिभाषासूत्रों के परस्पर अन्तर को समझ सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व आप सन्धिप्रकरण के अन्तर्गत यण्, अयादि, गुण और वृद्धि सन्धि को भली-भाँति पढ़ चुके हैं। इस इकाई में आप अच् सन्धि के पूर्वरूप के बाद की सन्धियों का अध्ययन करेंगे। प्रस्तुत इकाई में आप पररूप, दीर्घ, पूर्वरूप आदि सन्धियों तथा प्रकृतिभाव के विभिन्न स्थलों के अध्ययन के साथ ही टिसंज्ञा, प्रगृह्यसंज्ञा और निपातसंज्ञा के सूत्रों एवं उनके उदाहरणों तथा अतिदेशव्यवस्था से भी परिचित होंगे। इसी क्रम में हम विधिसूत्रों के अर्थोपकारक कुछ मुख्य परिभाषासूत्रों को भी जानेंगे। परिभाषासूत्रों में भी परस्पर अपवादत्व का भाव होता है, जिससे कुछ एक स्थानों पर

उनके अवकाश को समझना अनिवार्य होता है। इस इकाई में इन सबका हम भली-भाँति अध्ययन करेंगे।

5.2 अच् सन्धि-एङि पररूपम् सूत्र से ऋत्यकः सूत्र पर्यन्त।

सूत्र – एङि पररूपम्(6.1.94)

वृत्ति – आदुपसर्गादेडादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात्।

सूत्रार्थ – अवर्णान्त उपसर्ग से एडादि धातु के परे रहते पूर्वपर के स्थान में पररूप एकादेश होता है।

उदाहरण – प्रेजते, उपोषति।

व्याख्या – यह पररूपविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'एङि' यह सप्तमी एकवचन तथा 'पररूपम्' प्रथमा एकवचन का पद है। यह सूत्र अनवकाश होने के कारण वृद्धिरेचि सूत्र का अपवाद है। पररूप एकादेश का अभिप्राय यह है कि पूर्व एवं पर में स्थित दोनों वर्णों के स्थान में परवर्ण जैसा रूपवाला एकादेश होना।

रूपसिद्धि –

प्रेजते – प्र+एजते इस स्थिति में वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि प्राप्त है जिसे बाधकर प्र इस अवर्णान्त उपसर्ग से एडादि धातु के परे रहते एङि पररूपम् सूत्र से पूर्वपर (अ+ए) के स्थान पर पररूप (परवर्ती वर्ण के जैसा रूप ए) हुआ। प्र+एजते इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करने से प्रेजते रूप सिद्ध हुआ।

उपोषति – उप+ओषति इस स्थिति में वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि प्राप्त है जिसे बाधकर उप इस अवर्णान्त उपसर्ग से एडादि धातु के परे रहते एङि पररूपम् सूत्र से पूर्वपर (अ+ओ) के स्थान पर पररूप (परवर्ती वर्ण के जैसा रूप ओ) हुआ। उप+ओषति इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करने से उपोषति सिद्ध हुआ।

सूत्र – अचोऽन्त्यादि टि(1.1.64)

वृत्ति – अचां मध्ये योऽन्त्यः, स आदिर्यस्य तद्विसंज्ञं स्यात्।

सूत्रार्थ – अचों के मध्य में जो अन्तिम अच्, वह है आदि में जिसके, उस शब्दसमुदाय की टिसंज्ञा होती है।

व्याख्या – यह संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'अचः' यह षष्ठी एकवचन का तथा 'अन्त्यादि' एवं 'टि' ये प्रथमा एकवचन के पद हैं।

यह सूत्र किसी शब्द के अचों के मध्य में जो अन्तिम अच्, वह है आदि में जिसके, उस शब्दसमुदाय की टिसंज्ञा करता है। जैसे मनस् शब्द में दो अच् हैं मकारोत्तरवर्ती अकार तथा नकारोत्तरवर्ती अकार। इनमें से अन्तिम अच् नकारोत्तरवर्ती अकार है। वह अन्तिम वर्ण स् के आदि में है। अतः उन दोनों का समुदाय अस् हुआ। अतः मनस् में अस् की टिसंज्ञा हुई। जहाँ पर एक ही अच् हो अथवा अच् के बाद कोई अन्य हल् वर्ण न हो तो केवल उसी अच् की व्यपदेशिवद्भाव से टिसंज्ञा होती है। जैसे राम इस शब्द में अन्तिम अच् मकारोत्तरवर्ती अकार की ही टिसंज्ञा होती है।

वार्तिक — शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् । तच्च टेः । शकन्धुः । कर्कन्धुः । मनीषा । आकृतिगणोऽयम् । मार्तण्डः ।

अर्थ — शकन्धुगण पठित शब्दों में (उनके इष्टप्रयोग के अनुरूप) पररूप कहना चाहिए ।

उदाहरण — शकन्धुः । कर्कन्धुः । मनीषा । मार्तण्डः ।

व्याख्या — यह वार्तिक पररूपप्रकरण में पठित है । इस प्रकरण में **एकः पूर्वपरयोः** का अधिकार है । अतः इस वार्तिक से भी पूर्वपर के स्थान पर पररूप होता है ।

तच्च टेः — अर्थात् वह पररूप टिसंज्ञक पूर्व तथा पर अच् के स्थान पर समझना चाहिए ।

आकृतिगणोऽयम् — शकन्धु आदि शब्दों का समूह (गण) आकृतिगण माना जाता है । इसका अभिप्राय यह है कि गणपाठ में शकन्ध्वादिगण के अन्तर्गत जितने शब्द पठित हैं, ये इतने ही हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिए । अपितु जिन-जिन शब्दों में पररूप की अप्राप्ति होने पर भी इष्टप्रयोग में पररूप कार्य हुआ दिखाई दे उसे इस गण के अन्तर्गत मान लेना चाहिए, जैसे — ‘मार्तण्डः’ इस लोकप्रसिद्ध शब्द में मार्त+अण्डः इस स्थिति में यद्यपि पररूप अप्राप्त है और पररूप के बिना यह सिद्ध भी नहीं हो सकता । साथ ही शकन्ध्वादिगण में इसका शाब्दिक पाठ भी नहीं है । परन्तु शिष्टप्रयोगों में पररूप से युक्त शब्द ही मिलता है । शकन्ध्वादिगण में इसका पाठ मानने से समाधान हो सकता है, अतः आकृतिसाम्य (पररूप वाली आकृति की समानता) के कारण इसे तथा इसी प्रकार के अन्य शब्दों को शकन्ध्वादिगण में पठित और इस गण को आकृतिगण मान लिया जाता है ।

रूपसिद्धि —

शकन्धुः — शक+अन्धु इस स्थिति में **अचोऽन्त्यादि टि** से शक के अन्तिम अच् (ककारोत्तरवर्ती अकार) की टिसंज्ञा हुई । तत्पश्चात् टिसंज्ञक अकार से परे अन्धु घटक अकार अच् है अतः उन दोनों के स्थान पर **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्** इस वार्तिक से पररूप एकादेश हुआ । शक्+अन्धु इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा विभक्तिकार्य होकर शकन्धुः रूप सिद्ध हुआ ।

कर्कन्धुः — कर्क+अन्धु इस स्थिति में **अचोऽन्त्यादि टि** से कर्क के अन्तिम अच् (ककारोत्तरवर्ती अकार) की टिसंज्ञा हुई । तत्पश्चात् टिसंज्ञक अकार से परे अन्धु घटक अकार अच् है अतः **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्** इस वार्तिक से पूर्वपर के स्थान में पररूप एकादेश हुआ । कर्क+अ+अन्धु इस स्थिति में वर्णसम्मलेन तथा विभक्तिकार्य होकर कर्कन्धुः यह रूप सिद्ध हुआ ।

मनीषा — मनस्+ईषा इस स्थिति में **अचोऽन्त्यादि टि** से मनस् के अस् इस समुदाय की टिसंज्ञा हुई । तत्पश्चात् टिसंज्ञक अस् से परे ईषा घटक ईकार अच् है अतः उन दोनों के स्थान पर **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्** इस वार्तिक से पूर्वपर के स्थान पर पररूप एकादेश हुआ । मनस्+ईषा इस स्थिति में वर्णसम्मलेन तथा विभक्तिकार्य होकर मनीषा रूप सिद्ध हुआ ।

मार्तण्डः — मार्त+अण्ड इस स्थिति में **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा व **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्** इस वार्तिक से पररूप एकादेश होकर मार्तण्डः सिद्ध हुआ।

सूत्र — ओमाडोश्च(6.1.95)

वृत्ति — ओमि आङि चात्परे पररूपमेकादेशः स्यात्।

सूत्रार्थ — अवर्ण से ओम् अथवा आङ् परे रहते पूर्वपर के स्थान में पररूप एकादेश होता है।

उदाहरण — शिवायों नमः।

व्याख्या — यह पररूपविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। ओमाडोः सप्तमी द्विवचन तथा च अव्यय पद है। आत्, एक, पररूप की पूर्वसूत्रों से अनुवृत्ति आती है। ओम् यह अव्यय तथा आङ् यह उपसर्ग है। आङ् के अन्त्य ङ् की इत्संज्ञा तथा लोप होकर आ ही शेष रहता है।

रूपसिद्धि —

शिवायों नमः — शिवाय+ओं नमः इस स्थिति में अवर्ण से अच्/एच् परे होने के कारण प्राप्त गुण/वृद्धि का बाधकर **ओमाडोश्च** इस अपवाद सूत्र से अवर्ण से परे ओम् घटक ओकार होने से उन दोनों (पूर्वपर) के स्थान पर पररूप एकादेश ओ हुआ। शिवाय्+ओं नमः इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके शिवायों नमः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — अन्तादिवच्च(6.1.85)

वृत्ति — योऽयमेकादेशः स पूर्वस्यान्तवत्परस्यादिवत्।

सूत्रार्थ — विधीयमान जो एकादेश वह पूर्व के अन्त के तथा पर के आदि के समान होता है।

उदाहरण — शिवेहि।

व्याख्या — यह अतिदेशसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। अन्तादिवत् और च ये दोनों ही पद अव्यय हैं। एकः, पूर्वपरयोः इन पदों की अनुवृत्ति आती है। सामान्यतः जो जैसा नहीं है उसे वैसा मान लेना (बना देना) अतिदेश है। **अतिदेशो नाम इतरधर्मस्य इतरस्मिन् प्रयोगादेशः** अर्थात् अन्य धर्म का अन्यत्र आरोपण करना ही अतिदेश है। पाणिनि के अतिदेशसूत्र ऐसा ही कार्य करते हैं। प्रस्तुत सूत्र दो स्थानी के स्थान पर हुए एकादेश में उन दोनों स्थानियों के धर्म (स्वभाव) का अतिदेश करता है अर्थात् स्थानी के गुण आदेश में ग्रहण करा देता है जिससे स्थानी सम्बन्धी कार्य हो सकें।

रूपसिद्धि —

शिवेहि — शिव+आङ्+इहि इस स्थिति में शिव+आ में दीर्घ तथा आ+इहि में गुण प्राप्त होने पर पहले कौन हो? यह जिज्ञासा होती है। **असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे** अर्थात् बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग कार्य में बहिरङ्ग कार्य को असिद्ध मानकर पहले अन्तरङ्ग कार्य करना चाहिए तथा **धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गम्** अर्थात् धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग होता है। अतः शिव+आ+इहि यहाँ पर द्वितीय कार्य

धातूपसर्ग का कार्य होने से अन्तरङ्ग है अतः पहले वह होगा। तत्पश्चात् आ+इहि में गुण होकर शिव+एहि इस स्थिति में **अन्तादिवच्च** सूत्र से गुणरूप जो एकादेश एकार वह पूर्व के अन्त्य के तथा पर के आदि के समान होता है। यहाँ पर पूर्व स्थानी आङ् घटक आकार है अतः इस सूत्र से एहि के एकार में आङ्त्व धर्म आ गया। जिसके फलस्वरूप **ओमाङोश्च** सूत्र से अवर्ण वकारोत्तरवर्ती अकार के परे आङ्त्व धर्मवान् ए के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर पररूप एकादेश हुआ। शिव्+एहि इस स्थिति में वर्णसम्मेलन होकर शिवेहि रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – अकः सवर्णे दीर्घः(6.1.101)

वृत्ति – अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात्।

सूत्रार्थ – अक् से सवर्णी अच् परे रहते पूर्वपर के स्थान पर दीर्घरूप एकादेश होता है।

उदाहरण – दैत्यारिः। श्रीशः। विष्णूदयः। होतृकारः।

व्याख्या – यह दीर्घविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'अकः' पंचमी एकवचन, 'सवर्णे' सप्तमी एकवचन तथा 'दीर्घः' प्रथमा एकवचन का पद है। अचि, एकः, पूर्वपरयोः इन पदों की अनुवृत्ति आती है। अक् प्रत्याहार (अ,इ,उ,ऋ,लृ) के वर्णों से सवर्णी अच् अर्थात् अ अथवा आ के बाद अ या आ, इ अथवा ई के बाद इ या ई आदि आये तो पूर्वपर के स्थान पर दीर्घरूप एकादेश होता है। यह सूत्र अवर्ण से अ परे होने पर **आद्गुणः** तथा इ,उ और ऋ के प्रसंग में **इको यणचि** का अपवाद है।

रूपसिद्धि –

दैत्यारिः – दैत्य+अरि इस स्थिति में अक् यकारोत्तरवर्ती अकार से परे सवर्णी अच् अरि घटक अकार है अतः **अकः सवर्णे दीर्घः** सूत्र से पूर्वपर के स्थान पर दीर्घरूप एकादेश आ हुआ। दैत्य्+आ+रि इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर दैत्यारिः रूप सिद्ध हुआ।

श्रीशः – श्री+ईश इस स्थिति में अक् श्री का ईकार से परे सवर्णी अच् ईश घटक ईकार है अतः **अकः सवर्णे दीर्घः** इस सूत्र से पूर्वपर के स्थान पर दीर्घरूप एकादेश ई हुआ। श्र्+ई+श इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर श्रीशः रूप सिद्ध हुआ।

विष्णूदयः – विष्णु+उदय इस स्थिति में अक् णकारोत्तरवर्ती उकार से परे सवर्णी अच् उदय घटक आदि उकार है अतः **अकः सवर्णे दीर्घः** इस सूत्र से पूर्वपर के स्थान पर दीर्घरूप एकादेश ऊ हुआ। विष्ण्+ऊ+दय इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर विष्णूदयः रूप सिद्ध हुआ।

होतृकारः – होतृ+ऋकार इस स्थिति में अक् (तकारोत्तरवर्ती ऋकार) से परे सवर्णी अच् (ऋकार शब्द घटक) ऋकार है अतः **अकः सवर्णे दीर्घः** सूत्र से पूर्वपर के स्थान पर दीर्घरूप एकादेश ऋ हुआ। होत्+ऋ+कार इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर होतृकारः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – एङः पदान्तादति(6.1.109)

वृत्ति – पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् ।

सूत्रार्थ – पदान्त में एङ् से अत् परे रहते पूर्वपर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है ।

उदाहरण – हरेऽव । विष्णोऽव ।

व्याख्या – यह पूर्वरूपविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'एङः' एवं 'पदान्तात्' पंचमी एकवचन तथा 'अति' यह सप्तमी एकवचन का पद है। अन्य पदों का अधिकार तथा अनुवृत्ति आती है। एङ् प्रत्याहार में ए और ओ ये दो वर्ण आते हैं। यदि ये वर्ण पद के अन्त में विद्यमान हों और इनसे परे अत् अर्थात् ह्रस्व अकार हो तो पूर्वपर के स्थान पर पूर्वरूप (पूर्व स्थानी जैसा वर्ण) एकादेश हो जाता है। यह सूत्र **एचोऽयवायावः** का अपवाद है।

रूपसिद्धि –

हरेऽव – हरे+अव इस स्थिति में हरे पद के अन्त में एङ् एकार है तथा उससे परे अव घटक आदि अकार ह्रस्व है अतः **एङः पदान्तादति** सूत्र से पूर्वपर (ए+अ) के स्थान में पूर्वरूप एकादेश ए हुआ। **हर्+ए+व** इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके रूप सिद्ध हुआ। इस प्रयोग में अवग्रह (ऽ) का चिह्न लगाएँ या न लगाएँ, यह अपनी इच्छा पर आधारित है। यह चिह्न मात्र इस बात को प्रकट करता है कि पूर्वरूप से पहले यहाँ पर अकार था।

विष्णोऽव – विष्णो+अव इस स्थिति में विष्णो पद के अन्त में एङ् ओकार है तथा उससे परे अव घटक आदि अकार ह्रस्व है अतः **एङः पदान्तादति** सूत्र से पूर्वपर (ओ+अ) के स्थान में पूर्वरूप एकादेश ओ हुआ। **विष्ण्+ओ+व** इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके विष्णोऽव रूप सिद्ध हुआ। इस प्रयोग में अवग्रह (ऽ) का चिह्न लगाना अपनी इच्छा पर निर्भर है। यह चिह्न मात्र इस बात को प्रकट करता है कि पूर्वरूप से पहले यहाँ पर अकार था।

सूत्र – सर्वत्र विभाषाः गोः(6.1.122)

वृत्ति – लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः पदान्ते ।

सूत्रार्थ – लोक और वेद में ह्रस्व अकार के परे रहते, एङन्त गो शब्द को पदान्त में विकल्प से प्रकृतिभाव होता है।

उदाहरण – गोअग्रम्, गोऽग्रम् । एङन्तस्य किम् ? चित्रग्वग्रम् । पदान्ते किम्? गोः ।

व्याख्या – यह प्रकृतिभावविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'सर्वत्र' अव्यय पद, 'विभाषा' प्रथमा एकवचन तथा 'गोः' यह षष्ठी एकवचन का पद है। प्रकृतिभाव का अर्थ स्वभाव है। वर्णों का स्वभाव उनका स्वरूप ही हो सकता है। प्रकृतिवद् अथवा प्रकृतिभाव से अभिप्राय शब्द का उसके मूल अवस्था में विद्यमान रहना अर्थात् कोई विकार न होना है। सूत्र में एङन्त गो शब्द कहने से समस्त पद चित्रगु आदि में गो शब्द होते हुए भी एङन्त न होने के कारण प्रकृतिभाव नहीं होगा। पदान्त

गो शब्द कहने से अपदान्त पंचमी विभक्ति एकवचन में गो+अस् इस स्थिति में प्रकृतिभाव नहीं होता है।

रूपसिद्धि —

गोअग्रम्, गोऽग्रम् — गो+अग्र इस स्थिति में पदान्त एङ् गकारोत्तरवर्ती ओकर से परे अग्र घटक ह्रस्व अकार है अतः **सर्वत्र विभाषा गोः** सूत्र से प्रकृतिभाव हुआ। गो+अग्र इस स्थिति में विभक्तिकार्य होकर गोअग्रम् रूप सिद्ध हुआ। जब विकल्प पक्ष में प्रकृतिभाव नहीं होगा, तब **एङः पदान्तादति** से पूर्वरूप होकर गोऽग्रम् रूप सिद्ध होगा।

सूत्र — अनेकाल् शित्सर्वस्य(1.1.55)

वृत्ति — इति प्राप्ते (अनेकाल् य आदेशः शिच्, स सर्वस्य षष्ठी निर्दिष्टस्य स्थाने स्यात्।)

सूत्रार्थ — अनेकाल् (अनेक अल् वर्ण वाला) अथवा शित् जो आदेश वह सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होता है।

व्याख्या — यह परिभाषासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'अनेकाल्' एवं 'शित्' प्रथमा एकवचन तथा 'सर्वस्य' यह षष्ठी एकवचन का पद है। अनेकाल् अर्थात् एक से अधिक अल् (वर्ण) वाला, शित् अर्थात् शकार इत्संज्ञा वाला। जिस सूत्र से षष्ठी को निर्दिष्ट करके अनेक अल् अथवा शित् आदेश होता है यह सूत्र वहाँ उपस्थित होकर सहायता करते हुए कहता है कि यह आदेश सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर हो। षष्ठी को निर्दिष्ट आदेश अन्त्य अल् के स्थान पर हो ऐसा **अलोऽन्त्यस्य** सूत्र कहता है। जिसका प्रस्तुत सूत्र **अनेकाल् शित् सर्वस्य** अपवाद शास्त्र है। यथा **अतो भिस् ऐस्** यह सूत्र षष्ठी को निर्देश करके भिस् के स्थान पर ऐस् यह अनेक अल् वाला आदेश करता है, अतः **अनेकाल् शित् सर्वस्य** की सहायता से यह आदेश भिस् इस सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होता है।

सूत्र — डिच्च(1.1.53)

वृत्ति — डिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात्।

सूत्रार्थ — अनेकाल् होते हुए भी डिच् आदेश अन्त्य अल् के स्थान पर होते हैं।

व्याख्या — यह परिभाषासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। डिच् प्रथमा एकवचन तथा च यह अव्यय पद है। अन्त्यस्य अल् की अनुवृत्ति आती है। पूर्व सूत्र **अनेकाल् शित् सर्वस्य** का यह सूत्र अपवाद है। अनेकाल् होते हुए भी यदि आदेश डिच् हो तो वह सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर ही होगा। डिच् आदेश अर्थात् जिस आदेश में डकार की इत्संज्ञा हुई हो। यथा अवङ् यह आदेश डिच् आदेश है अतः यह स्थानी के अन्त्य अल् के स्थान पर ही होगा।

सूत्र — अवङ् स्फोटायनस्य(6.1.123)

वृत्ति — पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् वाऽचि।

सूत्रार्थ — अच् परे रहते, पदान्त में एङन्त गो शब्द को विकल्प से अवङ् आदेश होता है।

उदाहरण — गवाग्रम्, गोऽग्रम्। पदान्ते किम्? गवि।

व्याख्या — यह सूत्र अवङ् विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'अवङ्' प्रथमा एकवचन तथा 'स्फोटायनस्य' यह षष्ठी एकवचन का पद है। अवङ् में ङकार की **हलन्त्यम्** सूत्र से इत्संज्ञा तथा **तस्य लोपः** से इत्संज्ञक वर्ण का लोप हो जाता है अतः अव ही शेष रहता है। स्फोटायन पाणिनि से पूर्ववर्ती व्याकरण के आचार्य हैं। पाणिनि ने इस सूत्र के माध्यम से उनके मत का उल्लेख किया है। पदान्त में गो शब्द के स्थान पर अवङ् होता है ऐसा कहने से अपदान्त सप्तमी विभक्ति एकवचन में गो+इ (ङि) इस स्थिति में अवङ् आदेश नहीं हुआ तथा यणादेश होकर गवि रूप बना।

रूपसिद्धि —

गवाग्रम् — गो+अग्र इस स्थिति में **सर्वत्र विभाषा गोः** सूत्र के विकल्प पक्ष में **ङिच्च्** सूत्र की सहायता से **अवङ् स्फोटायनस्य** सूत्र से गकारोत्तरवर्ती ओकार के स्थान पर अवङ् आदेश हुआ। अवङ् में ङ् इत्संज्ञक है अतः उसका **तस्य लोपः** से लोप हो जाता है। ग्+अव+अग्र इस स्थिति में **अकः सवर्णे दीर्घः** से वकारोत्तरवर्ती अकार तथा अग्र घटक आदि अकार के स्थान दीर्घरूप एकादेश आ होता है। ग्+अवाग्र इस स्थिति में स्वादिकार्य होकर गवाग्रम् यह रूप सिद्ध हुआ। गोऽग्रम् की सिद्धि हम **सर्वत्र विभाषाः गोः** सूत्र में कर ही चुके हैं।

सूत्र — **इन्द्रे च(6.1.124)**

वृत्ति — गोरवङ् स्यादिन्द्रे।

सूत्रार्थ — इन्द्र शब्द परे रहते भी एङन्त गो शब्द के अन्त्य ओकार के स्थान पर अवङ् आदेश होता है।

उदाहरण — गवेन्द्रः।

व्याख्या — यह अवङ् विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'इन्द्रे' सप्तमी एकवचन और 'च' यह अव्यय पद है। यह सूत्र **अवङ् स्फोटायनस्य** सूत्र का अपवाद है। उस सूत्र से अवङ् आदेश विकल्प से होता था परन्तु इस सूत्र से नित्य होता है।

गवेन्द्रः — गो+इन्द्र इस स्थिति में **इन्द्रे च** सूत्र से इन्द्र शब्द परे रहते गो शब्द के अन्त्य ओकार के स्थान पर अवङ् (अव) आदेश हुआ। ग्+अव+इन्द्र इस स्थिति में **आदगुणः** सूत्र से वकारोत्तरवर्ती अकार से परे इन्द्र घटक इकार अच् है अतः पूर्वपर के स्थान पर गुण एकादेश एकार हुआ। ग्+अवे+न्द्र इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर गवेन्द्रः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — **दूराद्धते च(8.2.84)**

वृत्ति — दूरात्सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा।

सूत्रार्थ — दूर से सम्बोधन करने में प्रयुक्त जो वाक्य उसकी टि को विकल्प से प्लुत होता है।

व्याख्या — यह प्लुतविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'दूरात्' पंचमी एकवचन, 'हूते' सप्तमी एकवचन और 'च' यह अव्यय पद है। एक स्थान से दूसरे स्थान के व्यक्ति को सूचना देने हेतु किए गए आवाहन में प्रयुक्त पद यदि विशेष प्रयत्न से सुनाई दे उसे दूर स्थान कहते हैं। उस दूर स्थान से किसी को कुछ बताने अथवा बुलाने के लिए जो वाक्य जोर से प्रयुक्त किया जाता है उसकी टि को प्रस्तुत सूत्र से विकल्प करके प्लुत होता है।

सूत्र — प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्(6.1.125)

वृत्ति — एतेऽचि प्रकृत्या स्युः।

सूत्रार्थ — प्लुत और प्रगृह्यसंज्ञक से अच् परे रहते नित्य ही प्रकृतिभाव होता है।

उदाहरण — आगच्छ कृष्णः अत्र गौश्चरति।

व्याख्या — यह प्रकृतिभावविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'प्लुतप्रगृह्याः' प्रथमा बहुवचन, 'अचि' सप्तमी बहुवचन तथा 'नित्यम्' द्वितीया एकवचन का पद है। प्लुत स्वरवर्णों की संज्ञा है। ऊकालोऽज्झस्वदीर्घप्लुतः सूत्र से स्वर वर्णों की ह्रस्व, दीर्घ और प्लुतसंज्ञा होती है।

रूपसिद्धि —

आगच्छ कृष्णः अत्र गौश्चरति — इस वाक्य के प्रथम उपवाक्य आगच्छ कृष्ण के टि णकारोत्तरवर्ती अकार को पूर्व सूत्र दूराद्धूते च इस सूत्र से विकल्प से प्लुत हुआ। आगच्छ कृष्णः इस स्थिति में द्वितीय उपवाक्य अत्र गौश्चरति के परे रहते णकारोत्तरवर्ती अकार से परे सवर्णो अच् अत्र घटक अकार है अतः **अकः सवर्णो दीर्घः** इस सूत्र से सवर्णदीर्घ प्राप्त हुआ। जिसे बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** इस सूत्र से प्लुत णकारोत्तरवर्ती अकार से परे अत्र घटक ह्रस्व अकार है अतः प्रकृतिभाव होकर आगच्छ कृष्णः अत्र गौश्चरति रूप सिद्ध हुआ। चूँकि प्लुत विकल्प से होता है अतः जिस पक्ष में प्लुत नहीं होगा उस पक्ष में सवर्णदीर्घ होकर आगच्छ कृष्णात्र गौश्चरति रूप बनेगा।

सूत्र — ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्(1.1.11)

वृत्ति — ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यसंज्ञं स्यात्।

सूत्रार्थ — दीर्घ ईकारान्त, दीर्घ ऊकारान्त तथा एकारान्त द्विवचन की प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

उदाहरण — हरी एतौ। विष्णू इमौ। गङ्गे अमू।

व्याख्या — यह प्रगृह्यसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। ईदूदेद्, द्विवचनम् और प्रगृह्यम् ये तीनों पद प्रथमा एकवचन के हैं।

रूपसिद्धि —

हरी एतौ — हरी+एतौ इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् से ईकारान्त द्विवचनान्त हरी पद की प्रगृह्यसंज्ञा हुई। तत्पश्चात् यहाँ इक् से अच् परे

रहते **इको यणचि** से प्राप्त यण् को बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञक से अच् परे रहते प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् यथास्थिति में रहकर हरी एतौ रूप सिद्ध हुआ।

विष्णू इमौ – विष्णू+इमौ इस स्थिति में **ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्** इस सूत्र से ऊकारान्त द्विवचनान्त विष्णू पद की प्रगृह्यसंज्ञा हुई। तत्पश्चात् यहाँ इक् से अच् परे रहते **इको यणचि** से प्राप्त यण् को बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञक से अच् परे रहते प्रकृतिभाव होकर विष्णू इमौ रूप सिद्ध हुआ।

गङ्गे अमू – गङ्गे+अमू इस स्थिति में **ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्** इस सूत्र से एकारान्त द्विवचनान्त गङ्गे पद की प्रगृह्यसंज्ञा हुई। तत्पश्चात् यहाँ पर एच् से अच् परे रहते **एचोऽयवायावः** से प्राप्त अयादि आदेश को बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञक से अच् परे रहते प्रकृतिभाव होकर गङ्गे अमू रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – अदसो मात्(1.1.12)

वृत्ति – अस्मात्परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः।

सूत्रार्थ – अदस् सम्बन्धी मकार के बाद ईकार तथा ऊकार शब्द के अन्त में हो तो उनकी प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

उदाहरण – अमी ईशाः। रामकृष्णावमू आसाते। मात्किम्? अमुकेऽत्र।

व्याख्या – यह प्रगृह्यसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'अदसः' और 'मात्' ये दोनों पद पंचमी एकवचन के हैं। अदस् शब्द सम्बन्धी मकार से परे यदि ईकार तथा ऊकार शब्द के अन्त में हो तो उसकी प्रगृह्यसंज्ञा होती है। अदस् सम्बन्धी मकार के बाद ईकार तथा ऊकार ही प्राप्त होते हैं अतः एकार का ग्रहण नहीं हुआ है। पूर्व सूत्र से केवल द्विवचन में ही प्रगृह्यसंज्ञा हो सकती थी, इस सूत्र से अदस् के द्विवचनान्त अमू तथा बहुवचनान्त अमी दोनों स्थानों पर प्रगृह्यसंज्ञा हो जायेगी। सूत्र में मकार के बाद ईकार तथा ऊकार हो तो ही प्रगृह्यसंज्ञा होती है ऐसा कहने के फलस्वरूप अमुके+अत्र यहाँ पर मकार के बाद एकार न होने से प्रगृह्यसंज्ञा नहीं हुई।

रूपसिद्धि –

अमी ईशाः – अमी+ईशा इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र **अदसो मात्** से अदस् सम्बन्धी मकार के बाद ईकार है अतः उसकी प्रगृह्यसंज्ञा हुई। मकारोत्तरवर्ती ईकार से सवर्णी अच् ईशा घटक ईकार परे रहते **अकः सवर्णे दीर्घः** से प्राप्त सवर्णदीर्घ को प्रगृह्यसंज्ञक से अच् परे होने के कारण बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** इस सूत्र से प्रकृतिभाव होकर अमी ईशाः रूप सिद्ध हुआ।

रामकृष्णावमू आसाते – अमू+आसाते इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र **अदसो मात्** से अदस् सम्बन्धी मकार के बाद ऊकार है अतः उसकी प्रगृह्यसंज्ञा हुई। मकारोत्तरवर्ती ऊकार से सवर्णी अच् आसाते घटक आकार परे रहते **इको यणचि** से प्राप्त यण् को बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** इस सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञक से अच् परे रहते प्रकृतिभाव होकर अमू आसाते रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – चादयोऽसत्वे(1.4.57)

वृत्ति – अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाताः स्युः।

सूत्रार्थ – अद्रव्यार्थक चादियों की निपातसंज्ञा होती है।

व्याख्या – यह निपातसंज्ञक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'चादयः' प्रथमा एकवचन तथा 'असत्त्वे' यह सप्तमी एकवचन का पद हैं। **लिङ्गसंख्यान्वयित्वं द्रव्यत्वम्** अर्थात् जिन शब्दों में लिङ्ग और संख्या का अन्वय (बोध) हो उन्हें द्रव्य कहते हैं। चादिगण अव्यय प्रकरण में वर्णित हैं। जिनकी निपात संज्ञा होती है उनकी अव्यय संज्ञा भी हो जाती है। जिसके फलस्वरूप विभक्तिलोप हो जाने से सभी विभक्तियों में एकसमान रूप रहता है।

सूत्र – प्रादयः(1.4.58)

वृत्ति – एतेऽपि तथा।

सूत्रार्थ – अद्रव्यार्थक चादियों की भी निपात संज्ञा होती है।

व्याख्या – यह निपातसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। सूत्र में 'प्रादयः' यह एकमात्र पद प्रथमा बहुवचन का है। असत्त्वे की अनुवृत्ति तथा निपाताः का अधिकार आता है। प्रादिगण पीछे उपसर्गसंज्ञा के प्रसंग में परिगणित है।

सूत्र – निपात एकाजनाङ्(1.1.14)

वृत्ति – एकोऽज् निपात आङ्वर्जः प्रगृह्यः स्यात्।

सूत्रार्थ – आङ् को छोड़कर जो एकाच् (एक अच् वाला) निपात है, उसकी प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

उदाहरण – इ इन्द्रः। उ उमेशः। वाक्यस्मरणयोरङित्। आ एवं नु मन्यसे। आ एवं किल तत्।

व्याख्या – यह निपातसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'निपातः', 'एकाज्' और 'अनाङ्' ये तीनों पद प्रथमा एकवचन के हैं। प्रगृह्य पद की अनुवृत्ति आ रही है। एकाच् निपात से अभिप्राय एक अच् वर्णात्मक निपात से है, समुदायस्थ एक अच् वर्ण से नहीं। अतः इ, उ एकाच् रूप निपात की प्रगृह्यसंज्ञा तो होगी परन्तु च, सु आदि एक अच् वाले समुदाय की प्रगृह्यसंज्ञा नहीं होगी। चादि गण में आ तथा आङ् ये दो निपात परिगणित हैं, जिसमें प्रथम आ की तो प्रगृह्यसंज्ञा होती है परन्तु ङित् आङ् (ङकार इत्संज्ञक आ) की प्रगृह्यसंज्ञा नहीं होगी।

रूपसिद्धि –

इ इन्द्रः – इ+इन्द्र में प्रथम इ निपातसंज्ञक तथा एकाच् भी है अतः उसकी प्रस्तुत सूत्र निपात एकाजनाङ् से प्रगृह्यसंज्ञा हुई। जिसके फलस्वरूप सवर्णदीर्घ को बाधकर प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृतिभाव होकर इ इन्द्रः रूप सिद्ध हुआ।

उ उमेशः – उ+उमेश इस स्थिति में प्रथम उ एकाच् निपात है अतः उसकी निपात एकाजनाङ् से प्रगृह्यसंज्ञा हुई। जिसके फलस्वरूप सवर्णदीर्घ को बाधकर प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृतिभाव होकर उ उमेशः रूप सिद्ध हुआ।

आ एवं नु मन्यसे एवं आ एवं किल तत् – इन दोनों वाक्यों में आ यह अङित् निपातसंज्ञक है अतः उसकी निपात एकाजनाङ् से प्रगृह्यसंज्ञा हुई। जिसके फलस्वरूप वृद्धि को बाधकर प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृतिभाव होकर आ एवं नु मन्यसे एवं आ एवं किल तत् रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – ओत्(1.1.15)

वृत्ति – ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः स्यात्।

सूत्रार्थ – ओदन्त (ओ हो अन्त में जिसके) निपात की भी प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

उदाहरण – अहो ईशाः।

व्याख्या – यह प्रगृह्यसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में ओत् यह एकमात्र पद प्रथमा एकवचन का है। पूर्व सूत्रों से निपात तथा प्रगृह्य की अनुवृत्ति आती है। अहो के एकाच् निपात नहीं होने से इसकी प्रगृह्यसंज्ञा नहीं प्राप्त थी।

रूपसिद्धि –

अहो ईशाः – अहो+ईशा इस स्थिति में एचोऽयवायावः से अवादेश प्राप्त था, परन्तु अहो यह अद्रव्यार्थक चादि है अतः इसकी चादयोऽसत्त्वे इस सूत्र से निपात संज्ञा हुई। निपातसंज्ञक अहो की प्रस्तुत ओत् से प्रगृह्यसंज्ञा हुई। प्रगृह्यसंज्ञक हकारोत्तरवर्ती ओकार से अच् परे रहते प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् से प्रकृतिभाव होकर अहो ईशाः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे(1.1.16)

वृत्ति – सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ परे।

सूत्रार्थ – सम्बुद्धिनिमित्तक ओकार से अवैदिक (लौकिक) इति शब्द के परे होने पर विकल्प से प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

उदाहरण – विष्णो इति, विष्ण इति, विष्णविति।

व्याख्या – यह प्रगृह्यसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में चार पद हैं। 'सम्बुद्धौ' सप्तमी एकवचन, 'शाकल्यस्य' षष्ठी एकवचन तथा इतौ और अनार्षे सप्तमी एकवचन के पद हैं। सूत्र में शाकल्यस्य पद से पाणिनि पूर्ववर्ती वैयाकरण आचार्य शाकल्य का मत अभिप्रेत है।

रूपसिद्धि –

विष्णो इति – विष्णो+इति इस स्थिति में अवादेश प्राप्त है, परन्तु अवैदिक इति शब्द के परे रहते सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे सूत्र से विष्णो की प्रगृह्यसंज्ञा हुई। प्रगृह्यसंज्ञक णकारोत्तरवर्ती ओकार से अच् परे रहते प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से

प्रकृतिभाव होकर विष्णो इति रूप सिद्ध हुआ। पक्ष में जब प्रगृह्यसंज्ञा नहीं होगी तब अवादेश तथा वकार का विकल्प से लोप करके विष्ण इति तथा विष्णविति ये दो रूप बनेंगे।

सूत्र — मय उजो वो वा(8.3.33)

वृत्ति — मयः परस्य उजो वो वाऽचि।

सूत्रार्थ — मय् से परे उज् निपात को विकल्प से व् आदेश होता है, अच् परे रहते।

उदाहरण — किम्बुक्तम्, किमु उक्तम्।

व्याख्या — यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में चार पद हैं। 'मयः' पंचमी एकवचन, 'उजः' षष्ठी एकवचन, वः यह प्रथमा एकवचन का तथा वा यह अव्यय पद है। मय् प्रत्याहार के अन्तर्गत अकार को छोड़कर वर्ग के सभी वर्ण आते हैं। प्रस्तुत सूत्र प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र का अपवाद है। पक्ष में जब वकार आदेश नहीं होगा तो प्रकृतिभाव हो जायेगा।

रूपसिद्धि —

किम्बुक्तम्, किमु उक्तम् — किम्+उ+उक्तम् इस स्थिति में अच् उक्तम् घटक उकार के परे रहते मय उजो वो वा इस सूत्र से मय् से परे उज् निपात को व् आदेश हुआ। किम्+व्+उक्तम् इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके किम्बुक्तम् रूप सिद्ध हुआ। पक्ष में जब व् आदेश नहीं होगा तो उज् की निपात एकाजनाङ् से प्रगृह्यसंज्ञा हुई। जिसके फलस्वरूप सवर्णदीर्घ को बाधकर प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृतिभाव होकर किमु उक्तम् रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च(6.1.127)

वृत्ति — पदान्ता इको ह्रस्वा वा स्युरसवर्णेऽचि। ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वरसन्धिः। चक्रि अत्र, चकयत्र। पदान्ता इति किम् ? गौर्यो।

सूत्रार्थ — असवर्णी अच् परे रहते पदान्त इक् को विकल्प से ह्रस्व होता है। ह्रस्वविधान करने के सामर्थ्य से स्वरसन्धि नहीं होती है।

उदाहरण — चक्रि अत्र, चकयत्र।

व्याख्या — यह ह्रस्वविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में पाँच पद हैं। 'इकः' षष्ठी एकवचन, 'असवर्णे' सप्तमी एकवचन, 'शाकल्यस्य' षष्ठी एकवचन, 'ह्रस्वः' प्रथमा एकवचन और 'च' यह अव्यय पद है। इस सूत्र में भी शाकल्य के मत का ग्रहण है। पदान्त इक् को ह्रस्व होता है ऐसा कहने से गौरी+औ के अपदान्त गौरी शब्द में ह्रस्व नहीं होगा।

रूपसिद्धि —

चक्रि अत्र, चकयत्र— चक्री+अत्र इस स्थिति में चक्री पद के अन्त्य ईकार से असवर्णी अच् इकार परे है अतः इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च सूत्र से ईकार को ह्रस्व इकार हुआ। चक्रि+अत्र ह्रस्व इकार विधान के सामर्थ्य से कोई अन्य सन्धि नहीं होती

और चक्रि अत्र रूप सिद्ध होता है। पक्ष में जब ह्रस्व नहीं होगा तो यण् आदेश होकर के चकयत्र रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – अचो रहाभ्यां द्वे(8.4.46)

वृत्ति – अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः। गौर्यो। (न समासे)। वाप्यश्वः।

सूत्रार्थ – अच् से परे जो रेफ और हकार उससे परे जो यर् उसे द्वित्व विकल्प से होता है। परन्तु यह कार्य समास में नहीं होता।

उदाहरण – गौर्यो।

व्याख्या – यह द्वित्वविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'अचः' पंचमी एकवचन, 'रहाभ्याम्' पंचमी द्विवचन तथा 'द्वे' यह प्रथमा द्विवचन का पद है।

रूपसिद्धि –

गौर्यो – गौरी+औ इस स्थिति में **इको यणचि** से यणादेश होकर गौर्+य्+औ इस स्थिति में **अचो रहाभ्यां द्वे** सूत्र से अच् (गकारोत्तरवर्ती औकार) से परे रेफ तथा उस रेफ से परे यर् (यकार) को विकल्प से द्वित्व हुआ। गौर्+य्+य्+औ इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके गौर्यो रूप सिद्ध हुआ। पक्ष में जब द्वित्व नहीं होगा तो गौर्यो रूप बनेगा।

सूत्र – ऋत्यकः(6.1.128)

वृत्ति – ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद्वा। ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः। पदान्ताः किम्? आच्छत्।

सूत्रार्थ – ह्रस्व ऋकार परे रहते पदान्त अक् को ह्रस्व विकल्प से होता है।

उदाहरण – ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः।

व्याख्या – यह ह्रस्वविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'ऋति' सप्तमी एकवचन तथा 'अकः' यह षष्ठी एकवचन का पद है। पदान्त में ही अक् को ह्रस्व होगा ऐसा कहने से आ+ऋच्छत् यहाँ पर ह्रस्व नहीं हुआ। पूर्व सूत्र से आकार को ह्रस्व प्राप्त नहीं था अतः इस सूत्र का विधान हुआ।

रूपसिद्धि –

ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः – ब्रह्मा+ऋषि इस स्थिति में **ऋत्यकः** इस सूत्र से पदान्त में अक् (आकार) से ऋषि घटक ह्रस्व ऋकार के परे होने पर आ को ह्रस्व अ होकर के ब्रह्म ऋषि रूप सिद्ध हुआ। यहाँ पर भी ह्रस्व विधान के सामर्थ्य से कोई अन्य सन्धि नहीं होगी। पक्ष में जब ह्रस्व नहीं होगा उस पक्ष में **आदगुणः** सूत्र से गुण होकर पूर्व आ और पर ऋ के स्थान पर अर् होकर ब्रह्मर्षिः रूप सिद्ध हुआ।

बोध प्रश्न

1. समुचित विकल्प का चयन कीजिए—

- i. उपोषति इस पद का सन्धिविच्छेद होगा –
(क) उप+उषति (ख) उप+औषति (ग) उप+ओषति (घ) उपौ+अषति
- ii. अचोऽन्त्यादि टि यह सूत्र है –
(क) संज्ञासूत्र (ख) विधिसूत्र (ग) नियमसूत्र (घ) अधिकारसूत्र
- iii. मनस् में टिसंज्ञक होगा –
(क) नस् (ख) स् (ग) अस् (घ) अनस्
- iv. शिवायों नमः यह उदाहरण सूत्र का है–
(क) आद्गुणः (ख) वृद्धिरादैच् (ग) एङि पररूपम् (घ) ओमाङोश्च
- v. इकार का सवर्णी है –
(क) अकार (ख) आकार (ग) ईकार (घ) उकार

2. सत्य अथवा असत्य कथन हेतु क्रमशः सही (✓) या गलत (×) का चिह्न लगाइए—

- i. श्रीशः दीर्घ सन्धि का उदाहरण है— ()
- ii. एङ् प्रत्याहार में चार वर्ण आते हैं— ()
- iii. ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् यह संज्ञासूत्र है— ()
- iv. गवाग्रम् का वैकल्पिक रूप गोऽग्रम् बनता है— ()
- v. अवङ् आदेश डित् होता है— ()

3. समुचित उत्तर द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए —

- i. डित् आदेश के स्थान पर होता है।
- ii. अनेकाल् शित् सर्वस्य यह..... सूत्र है।
- iii. प्रगृह्यसंज्ञा दीर्घ औकारान्त की..... है।
- iv. गवेन्द्रः का द्वितीय रूप है।
- v. अद्रव्यार्थक चादियों की..... संज्ञा होती है।

अभ्यास प्रश्न

1. सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्थे सूत्रस्थ पदों की सङ्ख्या एवं विभक्तियाँ बताइए।
2. अन्तादिवच्च सूत्र की कार्यविधि को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. प्रगृह्यसंज्ञक सूत्रों को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
4. शिवेहि इस प्रयोग की ससूत्र सिद्धि कीजिए।
5. ऋत्यकः सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

5.3 सारांश

इस इकाई में हमने अच् सन्धि के एङि पररूपम्(6.1.94) सूत्र से लेकर ऋत्यकः(6.1.128) तक के सूत्रों का सम्यक् रूप से अध्ययन किया। इस प्रकार इस इकाई में हमने पररूप सन्धि, टिसंज्ञा एवं उसके फल अतिदेशव्यवस्था की कार्यविधि, दीर्घसन्धि तथा

पूर्वरूपसन्धि का अध्ययन किया। तत्पश्चात् सन्ध्यभाव के स्थलों अर्थात् प्रकृतिभाव विषयक सूत्रों से परिचित हुए। इसी क्रम में परिभाषासूत्रों तथा प्रगृह्य एवं निपातसंज्ञा का परिचय भी प्राप्त किया। इकाई के अन्त में पूर्वस्वर को विकल्प से ह्रस्व होना एवं ह्रस्वपक्ष में सन्ध्यभाव से भी परिचित हुए।

5.4 शब्दावली

पररूप — पररूप एकादेश का अभिप्राय यह है कि पूर्व एवं पर में स्थित दोनों वर्णों के स्थान में परवर्ण जैसा रूपवाला एकादेश होना।

प्रकृतिभाव — प्रकृतिभाव का अर्थ स्वभाव है। वर्णों का स्वभाव उनका स्वरूप ही हो सकता है। प्रकृतिवद् अथवा प्रकृतिभाव से अभिप्राय शब्द का उसके मूल अवस्था में विद्यमान रहना अर्थात् कोई विकार न होना है।

अनेकाल् — एक से अधिक वर्ण हो जिसमें वह अनेकाल् कहलाता है।

दूर — जिस स्थान से किसी दूसरे स्थान के व्यक्ति को कोई सूचना देनी हो तथा आवाहन के लिए प्रयुक्त पद यदि साधारण प्रयत्न से न सुनाई दे किन्तु विशेष प्रयत्न से सुनाई दे तो उस स्थान को दूर स्थान कहते हैं।

अतिदेश — जो जैसा नहीं है उसे वैसा मान लेना या बना देना ही अतिदेश है।

आकृतिगण — आकृत्या स्वरूपेण कार्यदर्शनेन वा गण्यते परिचीयते इति आकृतिगणः अर्थात् अपनी आकृति, स्वरूप या (शब्द में दिखाई देने वाले) कार्य से परिगणित अथवा परिचित होने वाले शब्दसमूह को आकृतिगण कहते हैं। इस प्रकार के गण में जितने शब्द पठित हैं उनसे अतिरिक्त भी समान आकृति, स्वरूप अथवा कार्य वाले शब्दों का परिगणन आकृतिगण में किया जा सकता है। यही इस गण की विशेषता है।

5.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी. गोरखपुर, गीताप्रेस.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या. गोविन्दाचार्य. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, चौखम्बा सुरभारती.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या. शास्त्री, धरानन्द. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या. शास्त्री, भीमसेन. लघुसिद्धान्तकौमुदी. (भाग-1-6), दिल्ली, भैमी प्रकाशन.

शास्त्री, चारुदेव. व्याकरण चन्द्रोदय. (भाग-1-3), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास.

वरदराजाचार्य, सम्पा. एवं हिन्दी सिंह, सत्यपाल. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, शिवालिक पब्लिकेशन.

Apte, V.S. *The Students' Guide to Sanskrit Composition*. Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

Kale, M.R. *Higher Sanskrit Grammar* .MLBD, Delhi.

Kanshi Ram, *Laghusiddhantkaumudi*. (Vol. 1-3). MLBD. Delhi, 2009.

Ballantyne, James R. *Laghusiddhantkaumudi*. Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

5.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1. i. ग, ii. क, iii. ग, iv. घ v. ग
2. i. सत्य, ii. असत्य, iii. सत्य, iv. सत्य, v. सत्य
3. i. अन्त्य अल् ii. परिभाषासूत्र iii. नहीं iv. नहीं v. निपात

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 6 हल् सन्धि – भाग 1

इकाई की रूपरेखा

- 6.0 उद्देश्य
- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 हल् सन्धि – स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से शश्छोऽटि सूत्र पर्यन्त।
- 6.3 सारांश
- 6.4 शब्दावली
- 6.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 6.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- हल् सन्धि के स्तोः श्चुना श्चुः (8.4.40) सूत्र से लेकर शश्छोऽटि (8.4.63) तक के सूत्रों के सूत्रार्थ एवं उदाहरणादि से परिचित हो सकेंगे।
- हल् सन्धि के अन्तर्गत श्चुत्व, ष्टुत्व, जश्त्व, चर्त्व, परसवर्ण, पूर्वसवर्ण, अनुनासिक और छत्व सन्धि के स्थलों में सन्धि एवं सन्धिविच्छेद करना तथा उसकी प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- श्चुत्व और ष्टुत्व सन्धिविधायक सूत्रों के अपवादरूप निषेध सूत्रों के कार्यविधि से परिचित हो सकेंगे।
- परिभाषासूत्रों की विधिसूत्रों के लिए क्या उपयोगिता है? यह भी जान सकेंगे।
- त्रिपादिस्थ सूत्रों के उत्तरोत्तर असिद्धत्व एवं उनके पूर्वापर प्रवृत्ति को भी समझ सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व अच् सन्धि की दो इकाइयों के अध्ययन के माध्यम से आपने अचों के मध्य होने वाली विभिन्न सन्धियों का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप हल् सन्धि का अध्ययन करेंगे। हल् सन्धि से अभिप्राय है हलों (व्यञ्जनों) के मध्य होने वाली सन्धि। जिस प्रकार अच् सन्धि में प्रायः दो अच् मिलकर एक अच् हो जाते हैं, हल् सन्धि में ऐसा नहीं होता है। इस सन्धि में प्रायः एक हल् दूसरे समीपवर्ती हल् को अपने जैसा बनाने का प्रयास करता है अर्थात् पूर्व अथवा पर हल् वर्ण अपने पूर्व या पर को अपने सदृश बनाता है। यथा हल् सन्धि के अन्तर्गत श्चुत्वसन्धि में शकार और चवर्ग अपने पूर्व और पर दोनों में से किसी ओर विद्यमान सकार एवं तवर्ग को अपने सदृश (शकार एवं चवर्ग) बना देते हैं। हल् सन्धि में मध्यवर्ती व्यञ्जनों का विकल्प से लोप करके एक से अधिक रूप भी बन जाते हैं। जैसे उत्+थ्+थान इस प्रयोग में

मध्यवर्ती प्रथम थकार का विकल्प से लोप होकर के दो रूप उत्थानम् एवं उत्थानम् बनते हैं।

6.2 हल् सन्धि – स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से शश्छोऽटि सूत्र पर्यन्त।

सूत्र – स्तोः श्चुना श्चुः (8.4.40)

वृत्ति – सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गो स्तः।

सूत्रार्थ – शकार और चवर्ग के साथ योग होने पर सकार और तवर्ग के स्थान पर शकार और चवर्ग आदेश होता है।

उदाहरण – रामश्शेते। रामश्चिनोति। सच्चित्। शार्ङ्गिज्जय।

व्याख्या – यह श्चुत्वविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'स्तोः' षष्ठी एकवचन, 'श्चुना' तृतीया एकवचन और 'श्चुः' यह प्रथमा एकवचन का पद है। सकार एवं तवर्ग (त्, थ्, द्, ध्, न्) के स्थान पर शकार एवं चवर्ग (च्, छ्, ज्, झ्, ञ्) आदेश होता है, यदि सकार और तवर्ग से शकार और चवर्ग का योग (मेल) हो तो। यह मेल दो प्रकार से हो सकता है (1) सकार अथवा तवर्ग के बाद शकार या चवर्ग हो, (2) सकार अथवा तवर्ग से पहले शकार या चवर्ग हो, अर्थात् सकार, चवर्ग से अव्ययहित पूर्व या पर शकार, चवर्ग हो तो सकार, तवर्ग के स्थान में शकार, चवर्ग हो जाता है। यहाँ स्थानी और आदेश की संख्या बराबर है अतः क्रमानुसार आदेश होता है।

रूपसिद्धि –

रामश्शेते – रामस्+शेते यहाँ पर रामस् यह राम शब्द का प्रथमा एकवचन का रूप है, सकार को विसर्ग के विकल्प पक्ष में यह स्थिति होती है। इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र स्तोः श्चुना श्चुः से रामस् के अन्तिम सकार से परे शेते घटक आदि शकार है जिससे सकार का मेल होना है अतः सकार को शकार होकर के रामश्शेते रूप सिद्ध हुआ।

रामश्चिनोति – रामस्+चिनोति इस स्थिति में स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से रामस् के सकार से परे चकार है, अतः सकार को शकार होकर के रामश्चिनोति रूप सिद्ध हुआ।

सच्चित् – सत्+चित् इस स्थिति में स्तोः श्चुना श्चुः से सत् के तकार से परे चकार है, अतः तकार को चकार होकर सच्चित् रूप सिद्ध हुआ।

शार्ङ्गिज्जय – शार्ङ्गिन्+जय इस स्थिति में स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से शार्ङ्गिन् के नकार से परे जकार है, अतः नकार को जकार होकर के शार्ङ्गिज्जय रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – शात्(8.4.44)

वृत्ति – शात्परस्य तवर्गस्य श्चुत्वं न स्यात्।

सूत्रार्थ — शकार से परे तवर्ग के स्थान पर चवर्ग आदेश नहीं होता है।

उदाहरण — विश्नः। प्रश्नः।

व्याख्या — यह निषेधार्थक विधिसूत्र है। इस सूत्र का एकमात्र पद शात् पंचमी एकवचन का है तो और न इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है। पूर्वसूत्र स्तोः श्चुना श्चुः से शकार से परे तवर्ग को चवर्ग होना प्राप्त है, जिसका निषेध यह सूत्र करता है।

रूपसिद्धि —

विश्नः — विश्+न इस स्थिति में स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से शकार से परे नकार (का योग होने पर) को अकार होना प्राप्त है, जिसका प्रस्तुत सूत्र शात् से शकार से परे तवर्गस्थ नकार होने के कारण निषेध हुआ। विश्+न इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर विश्नः रूप सिद्ध हुआ।

प्रश्नः — प्रश्+न इस स्थिति में स्तोः श्चुना श्चुः से शकार से परे नकार (का योग होने पर) को अकार होना प्राप्त है, जिसका प्रस्तुत सूत्र शात् से शकार से परे तवर्गस्थ नकार होने के कारण निषेध हुआ। प्रश्+न इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर प्रश्नः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — ष्टुना ष्टुः(8.4.41)

वृत्ति — स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्यात्।

सूत्रार्थ — षकार एवं टवर्ग के साथ योग होने पर सकार एवं तवर्ग के स्थान पर षकार एवं टवर्ग आदेश होता है।

उदाहरण — रामष्ष्टः। रामष्ठीकते। पेष्टा। तट्टीका। चक्रिण्डौकसे।

व्याख्या — यह ष्टुत्वविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'ष्टुना' तृतीया एकवचन और 'ष्टुः' यह प्रथमा एकवचन का पद है। सकार एवं तवर्ग (त्, थ्, द्, ध्, न्) के स्थान पर षकार एवं टवर्ग (ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्) आदेश होता है, यदि सकार और तवर्ग से षकार और टवर्ग का योग (मेल) हो तो। यह मेल दो प्रकार से हो सकता है (1) सकार अथवा तवर्ग के बाद षकार या टवर्ग हो, (2) सकार अथवा तवर्ग से पहले षकार या टवर्ग हो, अर्थात् सकार, तवर्ग से अव्ययहितपूर्व या पर षकार, टवर्ग हो तो सकार, तवर्ग के स्थान में षकार, टवर्ग हो जाता है। यहाँ स्थानी और आदेश की संख्या बराबर है अतः क्रमानुसार आदेश होता है।

रूपसिद्धि —

रामष्ष्टः — रामस्+षष्ट यहाँ पर रामस् के सकार को विसर्ग के विकल्प पक्ष में यह स्थिति होती है। इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र ष्टुना ष्टुः से रामस् के सकार से परे षकार है जिससे सकार का मेल होना है अतः सकार को मूर्धन्य षकार होकर रामष्ष्टः रूप सिद्ध हुआ।

रामष्ठीकते — रामस्+टीकते इस स्थिति में ष्टुना ष्टुः से रामस् के सकार से परे टीकते का टकार है, अतः सकार को मूर्धन्य षकार होकर रामष्ठीकते रूप सिद्ध हुआ।

पेष्ठा — पेष्+ता इस स्थिति में ष्टुना ष्टुः से पेष् के षकार से परे तकार है, अतः तकार को मूर्धन्य टकार होकर पेष्ठा रूप सिद्ध हुआ।

तट्टीका — तत्+टीका इस स्थिति में ष्टुना ष्टुः से तत् के अन्तिम तकार से परे टकार है, अतः तकार को टकार होकर तट्टीका रूप सिद्ध हुआ।

चक्रिण्डौकसे — चक्रिन्+ढौकसे इस स्थिति में ष्टुना ष्टुः सूत्र से चक्रिन् के नकार से परे ढौकसे का ढकार है, अतः उस नकार को णकार होकर चक्रिण्डौकसे रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — न पदान्ताद्दोरनाम्(8.4.42)

वृत्ति — पदान्ताद्द्वर्गात्परस्यानामः स्तोः ष्टुर्न स्यात्। षट् सन्तः। षट् ते। पदान्तात् किम्? ईद्रे। टोः किम्? सर्पिष्टमम्।

सूत्रार्थ — पदान्त टवर्ग से परे नाम् के नकार को छोड़कर अन्य सकार एवं तवर्ग को षकार एवं टवर्ग (ष्टुत्व) नहीं होता है।

उदाहरण — षट् सन्तः। षट् ते। पदान्तात् किम्? ईद्रे। टोः किम्? सर्पिष्टमम्।

व्याख्या — यह ष्टुत्वनिषेधक विधिसूत्र है। इस सूत्र में चार पद हैं। 'न' 'यह अव्यय, 'अपदान्तात्' और 'टोः' ये दोनों पंचमी एकवचन तथा 'अनाम्' यह षष्ठी बहुवचन का पद है। पूर्वसूत्र से प्राप्त ष्टुत्व का पदान्त टवर्ग से परे सकार एवं तवर्ग को ष्टुत्व आदेश होने का यह सूत्र निषेध करता है, नाम् शब्द को छोड़कर। सूत्र में पदान्त टवर्ग से परे ही ष्टुत्व का निषेध करने से ईट्+ते यहाँ पर निषेध नहीं होता अतः ष्टुत्व होकर ईद्रे यह रूप सिद्ध होता है। टवर्ग से परे ही केवल निषेध होता है ऐसा कहने से षकार से परे ष्टुत्व का निषेध नहीं होगा। जिसके फलस्वरूप सर्पिष्+तमम् यहाँ पर ष्टुत्व होकर सर्पिष्टमम् रूप बनेगा।

रूपसिद्धि —

षट् सन्तः — षड्+सन्त इस स्थिति में ष्टुना ष्टुः सूत्र से षड् के डकार से परे सन्त के सकार को ष्टुत्व (षकार) प्राप्त है। षड् का डकार पदान्त में है अतः न पदान्ताद्दोरनाम् इस सूत्र से पदान्त टवर्ग से परे होने के कारण सकार को ष्टुत्व (षकार) का निषेध हुआ। षड्+सन्त इस स्थिति में खरि च सूत्र से डकार को चर्त्व (टकार) होकर षट् सन्तः रूप सिद्ध हुआ।

षट् ते — षड्+ते इस स्थिति में ष्टुना ष्टुः सूत्र से षड् के डकार से परे तकार को ष्टुत्व (टकार) प्राप्त है। षड् का डकार पदान्त में है अतः न पदान्ताद्दोरनाम् से पदान्त टवर्ग से परे होने के कारण तकार को ष्टुत्व (टकार) होने का निषेध हुआ। षड्+ते इस स्थिति में खरि च सूत्र से डकार को चर्त्व (टकार) होकर षट् ते रूप सिद्ध हुआ।

वार्तिक — अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्।

अर्थ — पदान्त टवर्ग से परे नाम्, नवति और नगरी शब्दों के नकार को छोड़कर अन्य सकार एवं तवर्ग को षकार एवं टवर्ग नहीं होता है, ऐसा कहना चाहिए। अर्थात् पदान्त टवर्ग से परे नाम्, नवति और नगरी शब्दों के नकार को ष्टुत्व हो जायेगा।

उदाहरण — षण्णाम्। षण्णवतिः। षण्णगर्गः।

रूपसिद्धि —

षण्णाम् — षङ्+नाम् इस स्थिति में ष्टुना ष्टुः से षङ् के डकार से परे नाम् के नकार को ष्टुत्व (णकार) प्राप्त है। षङ् का डकार पदान्त में है अतः न पदान्ताद्दोरनाम् से पदान्त टवर्ग से परे होने के कारण नकार को ष्टुत्व (णकार) होने का निषेध प्राप्त था जिसका सूत्रस्थ अनाम् पद एवं अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् इस वार्तिक से निषेध हुआ। जिसके फलस्वरूप ष्टुना ष्टुः इस सूत्र से ष्टुत्व (णकार) हुआ। षङ्+णाम् इस स्थिति में प्रत्यये भाषायां नित्यम् इस वार्तिक से डकार को भी णकार होकर षण्णाम् रूप सिद्ध हुआ।

षण्णवतिः — षङ्+नवति इस स्थिति में ष्टुना ष्टुः सूत्र से षङ् के डकार से परे नवति के नकार को ष्टुत्व (णकार) प्राप्त है। षङ् का डकार पदान्त में है अतः न पदान्ताद्दोरनाम् से पदान्त टवर्ग से परे होने के कारण नकार को ष्टुत्व (णकार) होने का निषेध प्राप्त था जिसका अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् इस वार्तिक से निषेध हुआ। जिसके फलस्वरूप ष्टुना ष्टुः से ष्टुत्व (णकार) हुआ। षङ्+णवति इस स्थिति में यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा सूत्र से डकार को भी विकल्प से णकार एवं स्वादिकार्य होकर षण्णवतिः रूप सिद्ध हुआ।

षण्णगर्गः — षङ्+नगर्ग इस स्थिति में ष्टुना ष्टुः सूत्र से षङ् के डकार से परे नगर्ग के नकार को ष्टुत्व (णकार) प्राप्त है। षङ् का डकार पदान्त में है अतः न पदान्ताद्दोरनाम् से पदान्त टवर्ग से परे होने के कारण नकार को ष्टुत्व (णकार) होने का निषेध प्राप्त था जिसका अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् इस वार्तिक से निषेध हुआ। जिसके फलस्वरूप ष्टुना ष्टुः से ष्टुत्व (णकार) हुआ। षङ्+णगर्ग इस स्थिति में यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा से डकार को भी विकल्प से णकार एवं स्वादिकार्य होकर षण्णगर्गः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — तोः षि(8.4.43)

वृत्ति — न ष्टुत्वम्।

सूत्रार्थ — षकार के परे रहते तवर्ग को ष्टुत्व (टवर्ग) नहीं होता है।

उदाहरण — सन्धः।

व्याख्या — यह ष्टुत्वनिषेधक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'तोः' षष्ठी एकवचन और 'षि' यह सप्तमी एकवचन का पद है। न और ष्टु इन पदों की अनुवृत्ति आती है। इस सूत्र से षकार परे रहते पूर्वस्थ तवर्ग को टवर्ग होने का निषेध होता है। अतः यह सूत्र ष्टुना ष्टुः का अपवाद सूत्र है।

रूपसिद्धि —

सन्धः — सन्+षष्ठ इस स्थिति में षष्ठ घटक आदि षकार के परे रहते ष्टुना ष्टुः से सन् के नकार को ष्टुत्व (णकार) प्राप्त है। जिसका तोः षि इस सूत्र से षकार परे होने के कारण निषेध होकर सन्धः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — झलां जशोऽन्ते(8.2.39)

वृत्ति — पदान्ते झलां जशः स्युः।

सूत्रार्थ — पदान्त में विद्यमान जो झल् उसके स्थान पर जश् आदेश होता है।

उदाहरण — वागीशः।

व्याख्या — यह जश्त्वविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'झलाम्' षष्ठी बहुवचन, 'जशः' प्रथमा बहुवचन और 'अन्ते' यह सप्तमी एकवचन का पद है। झल् प्रत्याहार के अन्तर्गत वर्णों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ वर्ण एवं ऊष्म (श्, ष, स्, ह) वर्ण आते हैं। जश् के अन्तर्गत वर्णों के तृतीय वर्ण आते हैं। **स्थानेऽन्तरतमः** सूत्र की सहायता से स्थान साम्य के अनुसार अधोलिखित आदेश होंगे—

यथा— क्, ख्, ग्, घ् और ह् के स्थान पर ग् आदेश
च्, छ्, ज्, झ् और श् के स्थान पर ज् आदेश
ट्, ठ्, ड्, ढ् और ष् के स्थान पर ड् आदेश
त्, थ्, द्, ध् और स् के स्थान पर द् आदेश
प्, फ्, ब् और भ् के स्थान पर ब् आदेश

रूपसिद्धि —

वागीशः — वाक्+ईश इस स्थिति में झलां जशोऽन्ते सूत्र से पदान्त में स्थित झल् (वाक् शब्द के अन्तिम क्) को जश् (गकार) हुआ। वाग्+ईश इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा विभक्तिकार्य होकर वागीशः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा(8.4.45)

वृत्ति — यरः पदान्तस्यानुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात्।

सूत्रार्थ — अनुनासिक वर्ण के परे रहते पदान्त यर् के स्थान पर विकल्प से अनुनासिक होता है।

उदाहरण — एतन्मुरारिः, एतद् मुरारिः।

व्याख्या — यह अनुनासिकविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में चार पद हैं। 'यरः' षष्ठी एकवचन, 'अनुनासिके' सप्तमी एकवचन, 'अनुनासिकः' प्रथमा एकवचन और 'वा' यह अव्यय पद है। जिन वर्णों का उच्चारण मुख और नासिका दोनों से होता है उनकी अनुनासिकसंज्ञा (**मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः**) होती है। अनुनासिक अच् और हल् दोनों होते हैं। पदान्त यर् से परे अनुनासिक अच् कहीं नहीं मिलता अतः यहाँ हल् अनुनासिक का ही ग्रहण होगा। हलों में अनुनासिक पाँच वर्ण हैं— ङ्, ज्, ण्, न् और म्। इन पाँचों में से कोई वर्ण परे हो तो पदान्त यर् को अनुनासिक विकल्प से होगा। यर् प्रत्याहार के अन्तर्गत ह् को छोड़कर अन्य सभी व्यञ्जनवर्ण आते हैं।

रूपसिद्धि –

एतन्मुरारिः, एतद् मुरारिः – एतद्+मुरारी इस स्थिति में यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा इस सूत्र से पदान्त यर् एतद् पद का अन्तिम दकार है एवं उससे परे अनुनासिक मुरारी घटक आदि मकार है, अतः पदान्त यर् (दकार) उसको अनुनासिक हुआ। **स्थानेऽन्तरतमः** इस सूत्र की सहायता से दकार को अनुनासिक स्थान साम्य के द्वारा नकार हुआ। एतन्+मुरारि इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर एतन्मुरारिः रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में यर् को अनुनासिक नहीं होगा उस पक्ष में एतद् मुरारिः यह रूप बनेगा।

वार्तिक – प्रत्यये भाषायां नित्यम्।

अर्थ – लोक में अनुनासिक है आदि में जिसके ऐसे प्रत्यय परे रहते पदान्त यर् को नित्य ही अनुनासिक होता है।

उदाहरण – तन्मात्रम्। चिन्मयम्।**रूपसिद्धि –**

तन्मात्रम् – तद्+मात्र इस स्थिति में तद् का दकार पदान्त यर् है अतः उससे परे मात्र (मात्रच् प्रत्यय) का मकार अनुनासिक है अतः यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा सूत्र से विकल्प से अनुनासिक प्राप्त है, जिसे बाधकर प्रत्यये भाषायां नित्यम् इस वार्तिक से लोक में प्रत्यय(मात्रच्)घटक अनुनासिक मकार के परे होने पर तद् के अन्तिम यर् दकार को नित्य अनुनासिक हुआ। यहाँ पर भी स्थान साम्य के द्वारा दकार को अनुनासिक नकार हुआ। तन्+मात्र इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर तन्मात्रम् रूप सिद्ध हुआ।

चिन्मयम् – चित्+मय इस स्थिति में तद् का तकार पदान्त यर् है अतः उससे परे मय् (मयट् प्रत्यय) का मकार अनुनासिक है अतः यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा सूत्र से विकल्प से अनुनासिक प्राप्त है, जिसे बाधकर प्रत्यये भाषायां नित्यम् इस वार्तिक से लोक में प्रत्यय घटक अनुनासिक मकार के परे होने पर चित् के अन्तिम यर् तकार को नित्य अनुनासिक हुआ। यहाँ पर भी स्थान साम्य के द्वारा तकार को अनुनासिक नकार हुआ। चिन्+मय इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर चिन्मयम् रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – तोर्लि(8.4.60)

वृत्ति – तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः।

सूत्रार्थ – लकार परे रहते तवर्ग के स्थान पर परसवर्ण आदेश होता है।

उदाहरण – तल्लयः। विद्वाल्लिखति। नस्यानुनासिको लः।

व्याख्या – यह परसवर्णविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'तोः' षष्ठी एकवचन और 'लि' यह सप्तमी एकवचन का पद है। परसवर्ण इस पद की अनुवृत्ति आती है। लकार परे होने पर परसवर्ण होना अर्थात् लकार ही होना, क्योंकि लकार का स्वयं के अतिरिक्त अन्य कोई सवर्ण नहीं है। लकार दो प्रकार का है— प्रथम

अनुनासिक (लँ) द्वितीय अननुनासिक (ल)। अतः तवर्ग के अन्तिम वर्ण अनुनासिक नकार के स्थान पर स्थानसाम्य के द्वारा अनुनासिक लँ होगा तथा अन्य चारों के स्थान पर अननुनासिक ल होगा।

रूपसिद्धि —

तल्लयः — तत्+लय इस स्थिति में लय के लकार के परे रहते तोलि इस सूत्र से तत् के त् के स्थान पर परसवर्ण अननुनासिक ल् आदेश हुआ। तल्+लय इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर तल्लयः रूप सिद्ध हुआ।

विद्वाल्लिखति — विद्वान्+लिखति इस स्थिति में लिखति के लकार के परे रहते तोलि सूत्र से विद्वान् के अनुनासिक न् के स्थान पर परसवर्ण अनुनासिक ल् आदेश हुआ। विद्वाल्लिखति इस स्थिति में वर्णसम्मेलनादि होकर विद्वाल्लिखति रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य(8.4.61)

वृत्ति — उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः।

सूत्रार्थ — उद् से परे स्था और स्तम्भ को पूर्वसवर्ण होता है।

व्याख्या — यह पूर्वसवर्णविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'उदः' पंचमी एकवचन, 'स्थास्तम्भोः' यह षष्ठी द्विवचन का और 'पूर्वस्य' यह षष्ठी एकवचन का पद है। सवर्ण इस पद की अनुवृत्ति आती है। उदः में पंचमी है अतः उससे स्था और स्तम्भ को पूर्वसवर्ण हो ऐसा सूत्र का सामान्य अर्थ है, अतः प्रश्न है कि स्था और स्तम्भ को पूर्वसवर्ण उद् से पूर्व में होने पर होगा अथवा पर में। दूसरा यह भी प्रश्न उठता है कि व्यवधान रहित में होगा अथवा अव्यवहित में होगा। इन दोनों प्रश्नों का समाधान अग्रिम परिभाषासूत्र प्रस्तुत करता है।

सूत्र — तस्मादित्युत्तरस्य(1.1.67)

वृत्ति — पंचमीनिर्देशेन क्रियमाणं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम्।

सूत्रार्थ — पंचमी को निर्देश करके होने वाला कार्य अव्यवहित पर के स्थान पर होना चाहिए।

व्याख्या — यह परिभाषासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'तस्माद्' पंचमी एकवचन, 'इति' यह अव्यय और 'उत्तरस्य' यह षष्ठी एकवचन का पद है। जैसा कि पूर्व परिभाषासूत्रों में स्पष्ट किया गया है कि परिभाषासूत्र अनियम की स्थिति में विधिसूत्रों के सहायक होते हैं। पूर्वसूत्र से प्राप्त पूर्वसवर्ण उद् के पूर्व में हो अथवा पर में हो इस अनियम को व्यवस्थित करते हुए यह सूत्र कहता है कि उदः में पंचमी है और उससे निर्दिष्ट पूर्वसवर्णरूप कार्य अव्यवहित पर को ही होगा।

सूत्र — आदेः परस्य(1.1.54)

वृत्ति — परस्य यद् विहितं तत्तस्यादेर्बोध्यम्। इति सस्य थः।

सूत्रार्थ — पर के स्थान पर जो कार्य विहित होता है वह उसके आदि वर्ण के स्थान पर ही होगा, ऐसा समझना चाहिए।

व्याख्या — यह सूत्र भी परिभाषासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'आदेः' और 'परस्य' ये दोनों पद षष्ठी एकवचन के हैं। उद्+स्था इस स्थिति में तस्मादित्युत्तरस्य इस परिभाषासूत्र की सहायता से उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य सूत्र से उद् से परे स्था के स्थान पर पूर्वसवर्ण की प्राप्ति हुई। सूत्रस्थ स्थास्तम्भोः पद में षष्ठी है अतः अलोऽन्त्यस्य सूत्र से षष्ठीनिर्दिष्ट पद के अन्त्य अल् के स्थान पर पूर्वसवर्ण की प्राप्ति हुई। इस स्थिति में आदेः परस्य सूत्र से पर के स्थान पर विधीयमान कार्य वह उस पर स्थानी के आदि वर्ण के स्थान पर होगा। इस निर्देश के कारण यहाँ पूर्वसवर्णरूपी कार्य पर के स्थान पर हो रहा है वह पर स्थानी स्था और स्तम्भ के आदि सकार के स्थान पर हो। अतः उद्+स्थान के स्था के सकार के स्थान पर स्थानेऽन्तरतमः सूत्र की सहायता से थ् हुआ। उद्+थ्+थान यह स्थिति हुई।

सूत्र — झरो झरि सवर्णे(8.4.65)

वृत्ति — हलः परस्य झरो वा लोपः सवर्णे झरि।

सूत्रार्थ — हल् से परे झर् का विकल्प से लोप होता है, सवर्णी झर् के परे रहते।

व्याख्या — यह लोपविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'झरः' षष्ठी एकवचन, 'झरि' और 'सवर्णे' ये दोनों सप्तमी एकवचन के पद हैं। हल् प्रत्याहार के अन्तर्गत सभी व्यञ्जन वर्ण आते हैं तथा झर् प्रत्याहार के अन्तर्गत वर्ण के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं श, ष, और स ये वर्ण आते हैं।

सूत्र — खरि च(8.4.55)

वृत्ति — खरि झलां चरः। इत्युदो दस्य तः।

सूत्रार्थ — खर् के परे रहते झल् के स्थान पर चर् होता है।

उदाहरण — उत्थानम्। उत्तम्भनम्।

व्याख्या — यह चर्त्तविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'खरि' सप्तमी एकवचन तथा 'च' यह अव्यय पद है। झलां और चरः की अनुवृत्ति आती है। खर् प्रत्याहार के अन्तर्गत वर्णों के प्रथम, द्वितीय और श, ष, स — ये वर्ण आते हैं। चर् प्रत्याहार के अन्तर्गत वर्णों के प्रथम एवं श, ष, स ये वर्ण आते हैं। इस सूत्र से खर् के परे रहते झल् के स्थान पर चर् होता है अर्थात् वर्णों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्ण के स्थान पर प्रथम उसी वर्ण का प्रथम वर्ण हो जाता है। श्, ष्, स् के स्थान पर स्थानसाम्य के कारण ये ही श्, ष्, स् आदेश होते हैं।

रूपसिद्धि —

उत्थानम् — उद्+स्थान इस स्थिति में तस्मादित्युत्तरस्यआदेः परस्य और स्थानेऽन्तरतमः इन तीनों परिभाषासूत्रों की सहायता से उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य सूत्र से उद् से परे स्थान के आदि सकार के स्थान पर थकार हुआ। उद्+थ्+थान इस स्थिति में झरो झरि सवर्णे सूत्र से उद् के दकार (हल्) से परे थ् (झर्) का थान (सवर्णी झर्) के थकार परे होने के कारण विकल्प से लोप हुआ। उद्+थान इस स्थिति में उद् के द् (हल्) के स्थान पर खरि च इस सूत्र से थान घटक थकार (खर्) के परे होने के कारण त् (चर्) आदेश हुआ। उत्+थान इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा

स्वादिकार्य होकर के उत्थानम् रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में थकार का लोप नहीं होता है तो उत्थानम् यह रूप बनेगा।

उत्तम्भनम् — उद्+स्तम्भन इस स्थिति में तस्मादित्युत्तरस्य, आदेः परस्य और स्थानेऽन्तरतमः इन तीनों परिभाषासूत्रों की सहायता से उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य सूत्र से उद् से परे स्तम्भन के सकार के स्थान पर थकार हुआ। उद्+थ्+तम्भन इस स्थिति में झरो झरि सवर्णे सूत्र से उद् के दकार से परे थ् का सवर्णी झर् (स्तम्भन के तकार) परे होने के कारण विकल्प से लोप हुआ। उद्+तम्भन इस स्थिति में उद् के अन्तिम द् के स्थान पर खरि च सूत्र से तम्भन घटक तकार के परे होने के कारण चर् (त्) आदेश हुआ। उत्+तम्भन इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर उत्तम्भनम् रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में लोप नहीं होता तो उत्थतम्भनम् यह रूप बनेगा।

सूत्र — झयो होऽन्यतरस्याम्(8.4.62)

वृत्ति — झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः। नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य तादृशो वर्गचतुर्थः।

सूत्रार्थ — झय् से परे हकार के स्थान में विकल्प से पूर्वसवर्ण होता है। संवार, नाद, घोष और महाप्राण वाले हकार के स्थान पर वैसा ही वर्गों का चतुर्थ वर्ण होता है।

उदाहरण — वाग्घरिः, वाग्हरिः।

व्याख्या — यह पूर्वसवर्णविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'झयः' पंचमी एकवचन, 'हः' षष्ठी एकवचन का और 'अन्यतरस्याम्' यह षष्ठी बहुवचन का पद है। पूर्वस्य और सवर्णः इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है। झय् प्रत्याहार के अन्तर्गत वर्गों के पंचमवर्ण को छोड़कर शेष सभी वर्ण आते हैं। अतः इनसे परे हकार को इनके सदृश पूर्वसवर्ण हकार के स्थान साम्य द्वारा वर्गों का चतुर्थ वर्ण होता है।

रूपसिद्धि —

वाग्घरिः, वाग्हरिः — वाक्+हरि इस स्थिति में झलां जशोऽन्ते इस सूत्र से पदान्त झल् वाक् के अन्तिम क् के स्थान पर जश् ग् हुआ। वाग्+हरि इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र झयो होऽन्यतरस्याम् से झय् वाग् के अन्तिम गकार से परे जो हरि घटक हकार उसको विकल्प से पूर्वसवर्ण प्राप्त हुआ। गकार के सवर्णी कवर्ग के पाँचों वर्ण हैं। यहाँ पर कौन सा आदेश हो? इसके लिए स्थानेऽन्तरतमः की सहायता से गुणकृत साम्य द्वारा हकार का बाह्य प्रयत्न संवार, नाद, घोष और महाप्राण है। कवर्ग में घकार ही संवार, नाद, घोष और महाप्राण बाह्य प्रयत्न वाला है अतः हकार के स्थान पर विकल्प से घकार आदेश हुआ। वाग्+घरि इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर वाग्घरिः रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में हकार को घकार नहीं होगा उस पक्ष में वाग्हरिः रूप बनता है।

सूत्र — शश्छोऽटि(8.4.63)

वृत्ति — झयः परस्य शस्य छो वाटि। तद्शिवः इत्यत्र दस्य श्चुत्वेन जकारे कृते खरि चेति जकारस्य चकारः।

सूत्रार्थ — झय् से परे शकार के स्थान पर विकल्प से छकार आदेश होता है, अट् परे रहते। तद्+शिव इस अवस्था में दकार को श्चुत्व करके जकार तथा जकार को चर्त्वं होकर चकार हुआ। तच्+शिव इस स्थिति में इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

उदाहरण — तच्छिवः, तच्छिवः।

व्याख्या — यह छत्वविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'शः' षष्ठी एकवचन, 'छः' प्रथमा एकवचन और 'अटि' यह सप्तमी एकवचन का पद है। झयः और अन्यतरस्याम् पदों की अनुवृत्ति आती है। यह सूत्र त्रिपादी के अन्तर्गत आता है और त्रिपादी सूत्रों में पूर्वसूत्र के प्रति परसूत्र असिद्ध होता है। **स्तोः श्चुना श्चुः**(8.4.40), **खरि च**(8.4.55) इन दोनों सूत्रों के प्रति **शश्छोऽटि**(8.4.63) यह सूत्र असिद्ध है। अतः किसी प्रयोग में इन सूत्रों के पश्चात् ही इस सूत्र की प्रवृत्ति होगी।

रूपसिद्धि —

तच्छिवः, तच्छिवः — तद्+शिव इस स्थिति में **स्तोः श्चुना श्चुः** सूत्र से तद् के अन्तिम दकार को शकार परे रहते जकार हुआ। तज्+शिव इस स्थिति में **खरि च** ज् को चर्त्वं च् हुआ। तच्+शिव इस स्थिति में शकारोत्तरवर्ती इकार रूपी अट् परे रहते **शश्छोऽटि** से झय् (तच् के अन्तिम चकार) से परे शिव के शकार को विकल्प से छकार हुआ। तच्+छिव इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर तच्छिवः रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में शकार को छकार नहीं होता उस पक्ष में तच्छिवः यह रूप बनेगा।

वार्तिक — छत्वममीति वाच्यम्।

अर्थ — झय् से परे शकार के स्थान पर विकल्प से छकार आदेश के प्रसङ्ग में अट् परे रहते की जगह अम् परे रहते कहना चाहिए।

उदाहरण — तच्छ्लोकेन।

रूपसिद्धि —

तच्छ्लोकेन — तद्+श्लोक इस स्थिति में **स्तोः श्चुना श्चुः** सूत्र से तद् के दकार को शकार परे रहते जकार हुआ। तज्+श्लोक इस स्थिति में **खरि च** सूत्र से ज् को चर्त्वं च् हुआ। तच्+श्लोक इस स्थिति में शकारोत्तरवर्ती लकार रूपी अम् परे रहते **छत्वममीति वाच्यम्** इस वार्तिक से झय् (तच् के अन्तिम चकार) से परे श्लोक के शकार को विकल्प से छकार हुआ। तच्+छ्लोक इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर तच्छ्लोकेन रूप सिद्ध हुआ।

बोध प्रश्न

1. समुचित विकल्प का चयन कीजिए।

- स्तोः श्चुना श्चुः** सूत्र से सकार के स्थान पर आदेश होता है—
(क) च् (ख) ज् (ग) ष् (घ) श्
- शात्** यह सूत्र है—

(क) संज्ञासूत्र

(ख) विध्यर्थक विधिसूत्र

(ग) निषेधार्थक विधिसूत्र

(घ) अधिकारसूत्र

iii. रामष्टीकते का सन्धिविच्छेद होता है—

(क) रामस्+टीकते (ख) रामष्ट्+ईकते (ग)रामश्+टीकते (घ) राम+टीकते

iv. चक्रिण्डौकसे यह उदाहरण सूत्र का है—

(क) स्तोः श्चुना श्चुः (ख) शात् (ग) ष्टुना ष्टुः (घ) न पदान्ताष्टोरनाम्

v. स्तोः का अभिप्राय है—

(क) सकार एवं तकार (ख) शकार एवं चकार (ग) सकार एवं तवर्ग
(घ) शकार एवं चवर्ग

2. सत्य अथवा असत्य कथन हेतु क्रमशः सही (✓) या गलत (×) का चिह्न लगाइए।

i. सन्धः इस प्रयोग में ष्टुत्व होता है —()

ii. जश् प्रत्याहार में वर्गों के तृतीय वर्ण आते हैं —()

iii. तोर्लि यह संज्ञासूत्र है —()

iv. एतन्मुरारिः का वैकल्पिक रूप सम्भव है —()

v. वर्गों के पंचम वर्ण अनुनासिक होते हैं —()

3. समुचित उत्तर द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

i. पदान्त में झल् के स्थान पर आदेश होता है।

ii. उत्थानम् का द्वितीय रूप होता है।

iii. तस्मादित्युत्तरस्य यह.....सूत्र है।

iv. शश्छोऽटि इस सूत्र का उदाहरण है।

v. परिभाषासूत्र विधिसूत्रों के..... होते हैं।

अभ्यास प्रश्न

i. उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य सूत्रस्थपदों की सङ्ख्या एवं विभक्तियाँ बताइए।

ii. झयो होऽन्यतरस्याम् इस सूत्र की कार्यविधि को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

iii. झल् को चर् होने से क्या अभिप्राय है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

iv. ष्टुना ष्टुः सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

v. खर् और चर् में क्या अन्तर है? बताइए।

6.3 सारांश

इस इकाई में आपने हल् सन्धि के अन्तर्गत श्चुत्व, ष्टुत्व, अनुनासिक, जश्त्व, परसवर्ण, पूर्वसवर्ण, चर्त्त्व और छत्व इन हल् सन्धियों को भली-भाँति जाना। सामान्य नियम के अपवादभूत विशेष नियमों का भी ज्ञान प्राप्त किया, यथा—ष्टुना ष्टुः से सामान्य नियम के अनुसार षकार और टवर्ग के योग में सकार और तवर्ग को षकार एवं टवर्ग होता है। इस सूत्र को समझने के पश्चात् इसके अपवादसूत्र न पदान्ताष्टोरनाम् से यह भी

जाना कि पदान्त टवर्ग से परे सकार एवं तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता है। इस प्रकार के अन्य उदाहरणों को भी हमने देखा। हल् सन्धि में एक स्थान पर जब अनेक आदेशों की प्राप्ति होती है तो यह ज्ञात करना कठिन हो जाता है कि कौन सा आदेश हो? क्योंकि स्थानसाम्य के प्रसङ्ग में एकाधिक आदेशों के उच्चारणस्थान समान रहते हैं। इस स्थिति में हमें गुणकृत साम्य का आश्रय लेकर बाह्य प्रयत्नों का साम्य देखना पड़ता है। सम्भवतः इसी कारण से लघुसिद्धान्तकौमुदी के वृत्तिकार अपनी वृत्ति में स्पष्टता हेतु साक्षात् लिखते हैं कि संवार, नाद, घोष और महाप्राण हकार के स्थान पर ये ही बाह्य प्रयत्न वाला घकार होगा।

6.4 शब्दावली

श्चुत्व – सन्धि के स्थल में यदि सकार और तवर्ग का शकार और चवर्ग के साथ योग (मेल) हो तो सकार एवं तवर्ग (त्, थ्, द्, ध्, न्) के स्थान पर शकार एवं चवर्ग (च्, छ्, ज्, झ्, ञ्) आदेश का होना श्चुत्व कहलाता है।

यह मेल दो प्रकार से हो सकता है—

- 1) सकार अथवा तवर्ग के बाद शकार या चवर्ग हो, अथवा
- 2) सकार अथवा तवर्ग से पहले शकार या चवर्ग हो।

इस प्रकार सकार, चवर्ग से अव्यवहित पूर्व या पर में शकार, चवर्ग के होने पर सकार, तवर्ग के स्थान पर शकार, चवर्ग हो जाना ही श्चुत्व है।

ष्टुत्व – सन्धि के स्थल में यदि सकार और तवर्ग का षकार और टवर्ग के साथ योग हो तो सकार एवं तवर्ग (त्, थ्, द्, ध्, न्) के स्थान पर षकार एवं टवर्ग (ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्) आदेश का होना ष्टुत्व कहलाता है।

यह मेल दो प्रकार से हो सकता है—

- 1) सकार अथवा तवर्ग के बाद षकार या टवर्ग हो, अथवा
- 2) सकार अथवा तवर्ग से पहले षकार या टवर्ग हो।

अर्थात् सकार, तवर्ग से अव्यवहित पूर्व या पर में षकार, टवर्ग के होने पर सकार, तवर्ग के स्थान में षकार, टवर्ग हो जाना ही ष्टुत्व है।

पदान्त – सुप् तथा तिङ् प्रत्यय जिन शब्दों के अन्त में हों उन्हें क्रमशः सुबन्त व तिङन्त कहा जाता है। पाणिनि ने **सुप्तिङन्तं पदम्** सूत्र के द्वारा इन्हीं सुबन्तों एवं तिङन्तों की पदसंज्ञा की है अर्थात् सुबन्त एवं तिङन्त को पद कहते हैं और पद के अन्त को पदान्त कहते हैं।

अनुनासिक – जिन वर्णों का उच्चारण मुख के साथ नासिका से किया जाता है, उनकी अनुनासिक संज्ञा होती है। संज्ञाप्रकरण में वर्णित **मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः** इस सूत्र से यह अनुनासिकसंज्ञा होती है।

जश्त्व – जश्त्व से अभिप्राय है जश् होना। जश् के अन्तर्गत वर्णों के तृतीय वर्ण आते हैं। जैसे झल् के स्थान पर निम्नलिखित प्रकार से जश्त्व होगा –

क्, ख्, ग्, घ् और ह् के स्थान पर ग् आदेश होगा।
 च्, छ्, ज्, झ् और श् के स्थान पर ज् आदेश होगा।
 ट्, ठ्, ड्, ढ् और ष् के स्थान पर ड् आदेश होगा।
 त्, थ्, द्, ध् और स् के स्थान पर द् आदेश होगा।
 प्, फ्, ब् और भ् के स्थान पर ब् आदेश होगा।

6.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी. गोरखपुर, गीताप्रेस.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या. गोविन्दाचार्य. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, चौखम्भा सुरभारती.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या. शास्त्री, धरानन्द. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या. शास्त्री, भीमसेन. लघुसिद्धान्तकौमुदी. (भाग-1-6), दिल्ली, भैमी प्रकाशन.

शास्त्री, चारुदेव. व्याकरण चन्द्रोदय. (भाग-1-3), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास.

वरदराजाचार्य, सम्पा. एवं हिन्दी सिंह, सत्यपाल. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, शिवालिक पब्लिकेशन.

Apte, V.S. *The Students' Guide to Sanskrit Composition*. Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

Kale, M.R. *Higher Sanskrit Grammar*. MLBD, Delhi.

Kanshi Ram, *Laghusiddhantkaumudi*. (Vol. 1-3). MLBD. Delhi, 2009.

Ballantyne, James R. *Laghusiddhantkaumudi*. Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

6.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1. i. घ, ii. ग, iii. क, iv. ग v. ग
2. i. असत्य, ii. सत्य, iii. असत्य, iv. सत्य, v. सत्य
3. i. जश्, ii. नहीं, iii. परिभाषासूत्र, iv. सञ्छम्भुः, v. अर्थोपकारक

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 7 हल् सन्धि – भाग 2

इकाई की रूपरेखा

- 7.0 उद्देश्य
- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 हल् सन्धि –मोऽनुस्वारः सूत्र से पदान्ताद्धा सूत्र पर्यन्त ।
- 7.3 सारांश
- 7.4 शब्दावली
- 7.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 7.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- हल् सन्धि के **मोऽनुस्वारः(8.3.23)** सूत्र से लेकर **पदान्ताद्धा(8.1.79)** तक के सूत्रों के सूत्रार्थ एवं उदाहरणादि से परिचित हो सकेंगे।
- हल् सन्धि के अन्तर्गत श्चुत्व, ष्टुत्व, जश्त्व, चर्त्व, परसवर्ण, पूर्वसवर्ण, अनुनासिक और अनुस्वार, छत्वसन्धि के स्थलों में सन्धि एवं सन्धिविच्छेद करना तथा उसकी प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- अनुस्वार, मत्व विधान, नत्व विधान एवं कुक्, टुक्, डुट्, णुट्, नुट्, सुट् और तुक् आदि आगमों से परिचित हो सकेंगे।
- आगमों के कारण होने वाले परिवर्तनों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- आगमों के सन्दर्भ में परिभाषासूत्रों की क्या उपयोगिता है? यह भी जान सकेंगे।
- त्रिपादिस्थ सूत्रों के उत्तरोत्तर असिद्धत्व एवं उनके पूर्वापर प्रवृत्ति को भी समझ सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व आपने अच् सन्धि की दो इकाइयों तथा हल् सन्धि की एक इकाई का भी भली-भाँति अध्ययन किया है। दो हलों (अथवा एक हल् व एक अच्) के मध्य होने वाली हल् सन्धि के कतिपय अंश आप पिछली इकाई में पढ़ चुके हैं। हल् सन्धि के शेषांश का अध्ययन आप प्रस्तुत इकाई में करने जा रहे हैं। इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में आप श्चुत्व, ष्टुत्व, जश्त्व, चर्त्व, परसवर्ण, पूर्वसवर्ण, अनुनासिक और अनुस्वार, छत्व आदि सन्धियों के अध्ययन के साथ ही कतिपय आगमों से भी परिचित होंगे।

7.2 हल् सन्धि – मोऽनुस्वारः सूत्र से पदान्ताद्वा सूत्र पर्यन्त।

सूत्र – मोऽनुस्वारः(8.3.23)

वृत्ति – मान्तस्य पदस्यानुस्वारो हलि।

सूत्रार्थ – हल् परे रहते मकारान्त पद के अन्तिम मकार के स्थान पर अनुस्वार आदेश होता है।

उदाहरण – हरिं वन्दे।

व्याख्या – यह अनुस्वारविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'मः' षष्ठी एकवचन और 'अनुस्वारः' यह प्रथमा एकवचन का पद है। सूत्र में षष्ठ्यन्त मः पद से निर्दिष्ट होने के कारण **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से मान्त पद के अन्तिम मकार के स्थान पर अनुस्वार प्राप्त हुआ।

रूपसिद्धि –

हरिं वन्दे – हरिम्+वन्दे इस स्थिति में हरिम् इस द्वितीयान्त मान्त (मकार अन्त वाले) पद से वन्दे घटक वकाररूपी हल् के परे होने के कारण **मोऽनुस्वारः** सूत्र से मकार के स्थान पर अनुस्वार होकर हरिं वन्दे रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – नश्चापदान्तस्य झलि(8.3.24)

वृत्ति – नस्य मस्य चापदान्तस्य झल्यनुस्वारः। झलि किम् ? मन्यते।

सूत्रार्थ – झल् परे रहते अपदान्त नकार और मकार के स्थान पर अनुस्वार होता है।

उदाहरण – यशांसि। आक्रंस्यते।

व्याख्या – यह अनुस्वारविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में चार पद हैं। 'नः' षष्ठी एकवचन, 'च' अव्ययपद, 'अपदान्तस्य' षष्ठी एकवचन और 'झलि' यह सप्तमी एकवचन का पद है। मः और अनुस्वारः इन दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। यह सूत्र अपदान्त में भी नकार एवं मकार के स्थान पर अनुस्वार करता है। सूत्र में झल् परे रहते ही अनुस्वार होगा ऐसा कहने से मन्यते (मन्+यते) यहाँ पर अनुस्वार नहीं हुआ।

रूपसिद्धि –

यशांसि – यशान् +सि इस स्थिति में अपदान्त यशान् घटक अन्तिम नकार से झल् (सि घटक सकार) के परे रहते **नश्चापदान्तस्य झलि** सूत्र से न् के स्थान पर अनुस्वार होकर यशांसि रूप सिद्ध हुआ।

आक्रंस्यते – आक्रम् +स्यते इस स्थिति में अपदान्त आक्रम् घटक मकार से झल् (स्यते घटक सकार) के परे रहते **नश्चापदान्तस्य झलि** सूत्र से म् के स्थान पर अनुस्वार होकर आक्रंस्यते रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः(8.4.58)

वृत्ति – स्पष्टम्।

सूत्रार्थ – यय् परे रहते अनुस्वार के स्थान में परसवर्ण आदेश होता है।

उदाहरण – शान्तः ।

व्याख्या – यह परसवर्णविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'अनुस्वारस्य' षष्ठी एकवचन, 'ययि' सप्तमी एकवचन और 'परसवर्णः' यह प्रथमा एकवचन का पद है। यय् प्रत्याहार के अन्तर्गत ऊष्मवर्णों (श, ष, स्, ह) को छोड़कर शेष व्यञ्जन आते हैं। सूत्र का अर्थ सूत्र से ही स्पष्ट है अतः वृत्तिकार वृत्ति में लिखते हैं – स्पष्टम्।

रूपसिद्धि –

शान्तः – शाम्+त इस स्थिति में अपदान्त शाम् घटक मकार से झल् (त घटक) तकार के परे रहते म् के स्थान पर अनुस्वार हुआ। शां+त इस स्थिति में **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** सूत्र से यय् तकार के परे रहते अनुस्वार को परसवर्ण नकार (त का सवर्णी नकार) हुआ। शान्+त इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर शान्तः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – वा पदान्तस्य(8.4.59)

वृत्ति – पदान्तस्यानुस्वारस्य ययि परे परसवर्णो वा स्यात्।

सूत्रार्थ – यय् परे रहते पदान्त अनुस्वार के स्थान में विकल्प से परसवर्ण आदेश होता है।

उदाहरण – त्वङ्करोषि, त्वं करोषि।

व्याख्या – यह परसवर्णविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'वा' अव्ययपद तथा 'पदान्तस्य' यह षष्ठी एकवचन का पद है। अनुस्वारस्य, ययि और परसवर्णः पदों की अनुवृत्ति आती है। यह सूत्र पूर्वसूत्र का अपवाद है। पदान्त में अनुस्वार को परसवर्ण विकल्प से होगा।

रूपसिद्धि –

त्वङ्करोषि, त्वं करोषि – त्वम्+करोषि स्थिति में त्वम् इस मान्त (मकार अन्त वाले) पद से करोषि घटक ककाररूपी हल् परे होने के कारण **मोऽनुस्वारः** सूत्र से मकार के स्थान पर अनुस्वार हुआ। त्वं+करोषि इस स्थिति में यय् करोषि घटक ककार के परे रहते पदान्त में जो अनुस्वार उसे **वा पदान्तस्य** सूत्र से विकल्प से परसवर्ण ङ् हुआ। त्वङ्+करोषि इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके त्वङ्करोषि रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में अनुस्वार को परसवर्ण नहीं होगा उस पक्ष में त्वं करोषि यह अनुस्वारयुक्त रूप बनेगा।

सूत्र – मो राजि समः क्वौ(8.3.25)

वृत्ति – क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात्।

सूत्रार्थ – क्विबन्त राज् धातु परे रहते सम् के मकार के स्थान पर मकार ही होता है।

उदाहरण – सम्राट्।

व्याख्या — यह मकारविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में चार पद हैं। 'मः' प्रथमा एकवचन, 'राजि' सप्तमी एकवचन, 'समः' षष्ठी एकवचन और 'क्वौ' यह सप्तमी एकवचन का पद है। यह सूत्र **मोऽनुस्वारः** का अपवादसूत्र है। सम् यह अव्यय है अतः इससे स्वादि प्रत्ययों की उत्पत्ति एवं उनके लोप होने से सम् पदसंज्ञक हुआ। सम्+राट् यहाँ पर हल् परे रहते **मोऽनुस्वारः** से मकार को अनुस्वार प्राप्त है, जिसे बाधकर यह सूत्र मकार के स्थान पर मकार ही हो (अनुस्वार न हो) ऐसा विधान करता है।

रूपसिद्धि —

सम्राट् — सम्+राट् इस स्थिति में पदान्त में स्थिति सम् के मकार को हल् परे रहते **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार प्राप्त है। जिसे बाधकर **मो राजि समः क्वौ** से क्विबन्त राज् धातु सम्बन्धी राट् के परे रहते मकार के स्थान पर मकार का ही विधान हुआ। सम्+राट् इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके सम्राट् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — हे मपरे वा(8.3.26)

वृत्ति — मपरे हकारे परे मस्य मो वा।

सूत्रार्थ — मकार के स्थान पर मकार विकल्प से होता है, मपरक हकार परे हो तो।

उदाहरण — किम् हल्लयति, किं हल्लयति।

व्याख्या — यह मकारविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'हे' और 'मपरे' ये दोनों सप्तमी एकवचन के तथा वा यह अव्यय पद है। यह सूत्र भी **मोऽनुस्वारः** का वैकल्पिक अपवाद है। हे मपरे पदों का अर्थ है मकार पर में हो जिसके ऐसे हकार के परे रहते।

रूपसिद्धि —

किम् हल्लयति, किं हल्लयति — किम्+हल्लयति इस स्थिति में किम् के मकार के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार प्राप्त है। जिसे बाधकर **हे मपरे वा** सूत्र से हल्लयति घटक मपरक हकार के परे रहते किम् के मकार को विकल्प से मकार होकर किम् हल्लयति रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में मकार नहीं होगा उस पक्ष में अनुस्वार होकर किं हल्लयति रूप सिद्ध होगा।

वार्तिक — यवलपरे यवला वा।

अर्थ — यवल (यकार, वकार एवं लकार) परक हकार परे हो तो मकार के स्थान पर विकल्प से क्रमशः अनुनासिक यकार, वकार एवं लकार होता है।

उदाहरण — किं ह्यः, किं ह्यः। किं ह्यवलयति, किं ह्यवलयति। किं ह्यलादयति, किं ह्यलादयति।

रूपसिद्धि —

किं ह्यः, किं ह्यः — किम्+ह्यः इस स्थिति में किम् के मकार को प्राप्त अनुस्वार को बाधकर **यवलपरे यवला वा** इस वार्तिक से यवल (यकार) परक हकार परे रहते किम् के मकार के स्थान पर विकल्प से अनुनासिक य् हुआ। किय्+ह्यः इस स्थिति में

वर्णसम्मेलन करके किंद्ध्यः रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में मकार को यकार नहीं होगा उस पक्ष में अनुस्वार होकर किं ह्यः रूप सिद्ध होगा।

किंद्ध्यवलयति, किं ह्यवलयति — किम् +ह्यवलयति इस स्थिति में किम् के मकार को प्राप्त अनुस्वार को बाधकर **यवलपरे यवला वा** इस वार्तिक से यवल (वकार) परक हकार परे रहते किम् के मकार के स्थान पर विकल्प से अनुनासिक व् हुआ। किंद्ध्य+ह्यवलयति इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके किंद्ध्यवलयति रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में मकार को वकार नहीं होगा उस पक्ष में अनुस्वार होकर किं ह्यवलयति रूप सिद्ध होगा।

किंल् हलादयति, किं हलादयति — किम्+हलादयति इस स्थिति में किम् के मकार को प्राप्त अनुस्वार को बाधकर **यवलपरे यवला वा** इस वार्तिक से यवल (लकार) परक हकार परे रहते किम् के अन्तिम मकार के स्थान पर विकल्प से अनुनासिक ल् हुआ। किंल् +हलादयति इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके किंल्हलादयति रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में मकार को लकार नहीं होगा उस पक्ष में अनुस्वार होकर किं हलादयति रूप सिद्ध होगा।

सूत्र – नपरे नः(8.3.27)

वृत्ति — नपरे हकारे मस्य नो वा।

सूत्रार्थ — नपरक हकार के परे रहते मकार के स्थान पर विकल्प से नकार होता है।

उदाहरण — किन् हुते, किं हुते।

व्याख्या — यह सूत्र नकारविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'नपरे' सप्तमी एकवचन और 'नः' यह प्रथमा एकवचन का पद है। यह सूत्र भी **मोऽनुस्वारः** का वैकल्पिक अपवादशास्त्र है। नपरे का अभिप्राय है कि नकार पर वाला।

रूपसिद्धि —

किन् हुते, किं हुते — किम्+हुते इस स्थिति में किम् के मकार को प्राप्त अनुस्वार को बाधकर **नपरे नः** सूत्र से हुते घटक नपरक हकार परे होने के कारण किम् के मकार के स्थान पर विकल्प से नकार आदेश होकर किन् हुते रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में मकार को नकार नहीं होगा उस पक्ष में अनुस्वार होकर किं हुते रूप बनेगा।

सूत्र – आद्यन्तौ टकितौ(1.1.46)

वृत्ति — टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तावयवौ स्तः

सूत्रार्थ — टित् और कित् जिससे विहित होते हैं, उसके क्रमशः आद्यवयव तथा अन्तावयव होते हैं।

व्याख्या — यह परिभाषासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'आद्यन्तौ' और 'टकितौ' ये दोनों ही प्रथमा द्विवचन के पद हैं। जिसमें टकार की इत्संज्ञा हुई हो वह टित् तथा जिसमें ककार की इत्संज्ञा हुई हो वह कित् कहलाता है। जिनसे टित् और कित् होते

हैं उनका टिट् आद्यवयव तथा कित् अन्तावयव होता है। यह परिभाषासूत्र है अतः यह विधिसूत्रों का उपकारक है।

सूत्र — ङ्णोः कुक् टुक् शरि(8.3.28)

वृत्ति — वा स्तः।

सूत्रार्थ — शर् (श्, ष, स्) परे रहते डकार को कुक् तथा णकार को टुक् आगम विकल्प से होता है।

व्याख्या — यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'ङ्णोः' षष्ठी एकवचन, 'कुक् टुक्' प्रथमा एकवचन और 'शरि' यह सप्तमी एकवचन का पद है। इस सूत्र से विहित कुक् एवं टुक् में उकार एवं ककार (उक्) की इत्संज्ञा एवं लोप होकर क्रमशः क् तथा ट् शेष रहता है अतः शेष जो कुक् का क् और टुक् का ट् वे कित् कहलायेंगे। कित् होने के करण आद्यन्तौ टकितौ सूत्र की सहायता से ये डकार एवं णकार के अन्त में विहित होंगे।

वार्तिक — चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्।

अर्थ — शर् (श्, ष, स्) परे रहते चय् (क्, च्, ट्, त्, प्) के स्थान पर वर्गों के द्वितीय वर्ण (ख्, छ्, ट्, थ्, फ्) विकल्प से होते हैं।

उदाहरण — प्राङ्ख् षष्ठः, प्राङ्क्षष्ठः, प्राङ्षष्ठः। सुगण्ढ् षष्ठः, सुगण्ट् षष्ठः, सुगण् षष्ठः।

रूपसिद्धि —

प्राङ्ख् षष्ठः, प्राङ्क्षष्ठः, प्राङ्षष्ठः — प्राङ्+षष्ठ इस स्थिति में प्राङ् के डकार से परे षष्ठ घटक षकार शर् है अतः आद्यन्तौ टकितौ की सहायता से ङ्णोः कुक् टुक् शरि सूत्र से डकार के अन्त में विकल्प से कुक् का आगम हुआ। प्राङ्+कुक्+षष्ठ इस स्थिति में कुक् के अन्तिम क् की हलन्त्यम् से तथा ककारोत्तरवर्ती अनुनासिक उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् से इत्संज्ञा हुई। इत्संज्ञक उ और क् का तस्य लोपः से लोप हुआ। प्राङ्+क् +षष्ठ इस स्थिति में षष्ठ घटक षकाररूपी शर् के परे रहते चयोः द्वितीया शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम् इस वार्तिक से चय् आगम हुआ। कुक् के क् को विकल्प से इस वर्ग का द्वितीय वर्ण ख् हुआ। प्राङ्+ख्+षष्ठ इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर प्राङ्ख् षष्ठः रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में चय् क् को द्वितीय वर्ण ख् नहीं होगा उस पक्ष में वर्णसम्मेलन होने से प्राङ्क्षष्ठः रूप बनेगा और जिस पक्ष में कुक् का आगम ही नहीं होगा उस पक्ष में प्राङ्षष्ठः रूप बनेगा।

सुगण्ढ् षष्ठः, सुगण्ट् षष्ठः, सुगण् षष्ठः — सुगण्+षष्ठ इस स्थिति में सुगण् के अन्तिम णकार से परे षष्ठ घटक आदि षकार शर् है अतः आद्यन्तौ टकितौ इस सूत्र की सहायता से ङ्णोः कुक् टुक् शरि से णकार के अन्त में विकल्प से टुक् आगम हुआ। सुगण्+टुक्+षष्ठ इस स्थिति में टुक् के उकार एवं ककार की इत्संज्ञा तथा लोप होकर सुगण् +ट्+षष्ठ इस स्थिति में षष्ठ घटक षकाररूपी शर् के परे रहते चयोः द्वितीया शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम् इस वार्तिक से चय् आगम हुआ। टुक्

के ट् को विकल्प से इस वर्ग का द्वितीयवर्ण ट् हुआ। सुगण्+ट्+षष्ठ इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर सुगण्ड् षष्ठः रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में चय् ट् को द्वितीय वर्ण ट् नहीं होगा उस पक्ष में वर्णसम्मेलन होने से सुगण्ड् षष्ठः रूप बनेगा और जिस पक्ष में टुक् का आगम ही नहीं होगा उस पक्ष में सुगण् षष्ठः रूप बनेगा।

सूत्र – डः सि धुट्(8.3.29)

वृत्ति – डात्परस्य सस्य धुड् वा।

सूत्रार्थ – डकार से परे सकार को विकल्प से धुट् आगम होता है।

उदाहरण – षट्सन्तः, षट् सन्तः।

व्याख्या – यह धुट् आगम विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'डः' पञ्चमी एकवचन, 'सि' सप्तमी एकवचन और 'धुट्' यह प्रथमा एकवचन का पद है। सूत्रस्थ डः पद पञ्चम्यन्त है अतः तस्मादित्युत्तरस्य इस परिभाषासूत्र की सहायता से डकार से अव्यवहित उत्तर सि को ही धुट् का आगम होगा। धुट् में उकार एवं टकार की इत्संज्ञा एवं लोप होने से धकार शेष रहता है तथा टित् होने से यह सकार के आदि में होता है।

षट्सन्तः, षट् सन्तः – षड्+सन्त इस स्थिति में षड् के डकार से अव्यवहित पर में सकार है अतः आद्यन्तौ टकितौ की सहायता से डः सि धुट् सूत्र से सकार के आदि में विकल्प से धुट् आगम हुआ। षड्+धुट्+सन्त इस स्थिति में धुट् के उकार एवं ट् की इत्संज्ञा और लोप होकर षड्+ध्+सन्त इस स्थिति में खरि च से खर् (सन्त घटक सकार) के परे रहते धकार के स्थान पर चर् तकार हुआ। षड्+त्+सन्त इस स्थिति में पुनः खरि च तकार के परे रहते षड् के डकार के स्थान पर चर् टकार हुआ। षट्+त्+सन्त इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर षट्सन्तः रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में धुट् आगम नहीं होगा उस पक्ष में षड् के डकार को चर् होकर षट् सन्तः रूप बनेगा।

सूत्र – नश्च(8.3.30)

वृत्ति – नान्तात्परस्य सस्य धुड् वा।

सूत्रार्थ – नान्त (नकार हो अन्त में जिसके) से परे सकार को विकल्प से धुट् का आगम होता है।

उदाहरण – सन्तसः, सन्सः।

व्याख्या – यह धुट् आगम विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'नः' पञ्चमी एकवचन तथा 'च' यह अव्यय पद है। सि, धुट् और वा पदों की अनुवृत्ति आती है। धुट् के टित् होने से वह सकार के आदि में (आद्यवयव) होगा।

रूपसिद्धि –

सन्तसः, सन्सः – सन्+स इस स्थिति में सन् इस नान्त से परे सकार को नश्च सूत्र से विकल्प से धुट् आगम हुआ। धुट् के उकार और टकार की इत्संज्ञा तथा लोप होकर सन्+ध्+स इस स्थिति में खरि च सकार के परे रहते धकार के स्थान पर

तकार आदेश हुआ। सन्+त्+स इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर सन्तः रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में धुट् नहीं होगा उस पक्ष में सन्तः रूप बनेगा।

सूत्र – शि तुक्(8.3.31)

वृत्ति – पदान्तस्य नस्य शे परे तुग्वा।

सूत्रार्थ – शि परे रहते पदान्त नकार को विकल्प से तुक् का आगम होता है।

उदाहरण – सञ्छम्भुः, सञ्च्छम्भुः, सञ्च्छाम्भुः, सञ्शम्भुः।

व्याख्या – यह तुक् आगम विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'शि' सप्तमी एकवचन और 'तुक्' यह प्रथमा एकवचन का पद है। तुक् में तकार शेष रहता है। तुक् ककार की इत्संज्ञा होने से कित् है अतः नान्त पद का अन्तावयव होगा।

रूपसिद्धि –

सञ्छम्भुः, सञ्च्छम्भुः, सञ्च्छाम्भुः, सञ्शम्भुः – सन्+शम्भु इस स्थिति में नान्त पद सन् से परे शम्भु घटक शकार को आद्यन्तौ टकितौ की सहायता से शि तुक् सूत्र से विकल्प से तुक् आगम हुआ। तुक् के उकार एवं ककार की इत्संज्ञा व लोप होकर सन्+त्+शम्भु इस स्थिति में स्तोः श्चुना श्चुः से शम्भु घटक शकार के साथ योग होने के कारण तकार को श्चुत्व चकार हुआ। सन्+च्+शम्भु इस स्थिति में पुनः स्तोः श्चुना श्चुः से सन् के नकार से परे चकार का योग होने के कारण नकार को श्चुत्व जकार हुआ। सञ्+च्+शम्भु इस स्थिति में शश्छोऽटि सूत्र से झय् चकार से परे शम्भु के शकार के स्थान पर विकल्प से छकार हुआ। सञ्+च्+छम्भु इस स्थिति में हल् सञ् के जकार से परे झर् चकार का झरो झरि सवर्णे से विकल्प से लोप हुआ। सञ्+छम्भु इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर प्रथम रूप सञ्छम्भुः सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में चकार का लोप नहीं होगा उस पक्ष में सञ्च्छम्भुः रूप बनेगा। जिस पक्ष में शकार को छकार आदेश नहीं होगा उस पक्ष में सञ्च्छाम्भुः रूप बनेगा और जिस पक्ष में तुक् आगम नहीं होगा उस पक्ष में सञ्शम्भुः रूप बनेगा।

सूत्र – डमो ह्रस्वादचि डमुण् नित्यम्(8.3.32)

वृत्ति – ह्रस्वात्परे यो डम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याचो डमुट्।

सूत्रार्थ – ह्रस्व से परे जो डम् (ङ्, ण्, न्), वह है अन्त में जिसके ऐसा जो पद, उससे परे अच् को नित्य डमुट् आगम होता है।

उदाहरण – प्रत्यङ्ङात्मा। सुगण्णीशः। सन्नच्युतः।

व्याख्या – यह डमुट् आगम विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में पाँच पद हैं। 'डमः' और 'ह्रस्वाद्' ये दोनों पञ्चमी एकवचन के, 'अचि' सप्तमी एकवचन, 'डमुट्' प्रथमा एकवचन तथा 'नित्यम्' यह द्वितीया एकवचन का पद हैं। डम् प्रत्याहार के अन्तर्गत ङ्, ण् और न् ये तीन वर्ण आते हैं। डमुट् में भी डम् प्रत्याहार है एवं उट् का योग प्रत्येक वर्ण के साथ होकर डुट्, णुट् और नुट् ये तीन आगम हो जाते हैं। डुट्, णुट् और नुट् में उकार एवं टकार की इत्संज्ञा एवं लोप होकर ङ्, ण् तथा न् शेष रहते हैं।

रूपसिद्धि –

प्रत्यङ्ङात्मा — प्रत्यङ्+आत्मा इस स्थिति में प्रत्यङ् घटक यकारोत्तरवर्ती अकार ह्रस्व है और उससे परे डम् ङकार है अतः ह्रस्व से परे डम् अन्त वाला पद हुआ प्रत्यङ्। उससे परे अच् आत्मा घटक आकार, उसे **डमो ह्रस्वादचि डमुण् नित्यम्** सूत्र से डमुट् (ङकार से परे अच् होने के कारण डमुट्) आगम हुआ। डुट् के अन्तिम टकार एवं उकार की इत्संज्ञा एवं लोप होकर प्रत्यङ्ङात्मा इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके प्रत्यङ्ङात्मा रूप सिद्ध हुआ।

सुगण्णीशः — सुगण्+ईश इस स्थिति में सुगण् घटक गकारोत्तरवर्ती अकार ह्रस्व है और उससे परे डम् णकार है अतः ह्रस्व से परे डम् अन्त वाला पद हुआ सुगण् एवं उससे परे अच् ईश घटक आदि ईकार उसे **डमो ह्रस्वादचि डमुण् नित्यम्** से डमुट् (णकार से परे अच् होने के कारण णुट्) आगम हुआ। णुट् के अन्तिम टकार एवं उकार की इत्संज्ञा एवं लोप होकर सुगण्+ण्+ईश इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर सुगण्णीशः रूप सिद्ध हुआ।

सन्नच्युतः — सन्+अच्युत इस स्थिति में सन् घटक सकारोत्तरवर्ती अकार ह्रस्व है और उससे परे डम् नकार है अतः ह्रस्व से परे डम् अन्त वाला पद हुआ सन् एवं उससे परे अच् अच्युत घटक अकार उसे **डमो ह्रस्वादचि डमुण् नित्यम्** से डमुट् (नकार से परे अच् होने के कारण नुट्) आगम हुआ। नुट् के अन्तिम टकार एवं उकार की इत्संज्ञा एवं लोप होकर सन्+न्+अच्युत इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर सन्नच्युतः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — समः सुटि(8.3.5)

वृत्ति — समो रुः सुटि।

सूत्रार्थ — सुट् के परे रहते सम् के मकार के स्थान पर रु आदेश होता है।

व्याख्या — यह रुविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'समः' षष्ठी एकवचन और 'सुटि' यह सप्तमी एकवचन का पद है। रु इस पद की अनुवृत्ति आती है। रु में उकार अनुनासिक है अतः उसकी इत्संज्ञा एवं लोप होकर र् शेष बचता है।

सूत्र — अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तुवा(8.3.2)

वृत्ति — अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा।

सूत्रार्थ — इस रु प्रकरण में रु से पूर्व वर्ण को विकल्प से अनुनासिक होता है।

व्याख्या — यह अनुनासिकविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में पाँच पद हैं। 'अनुनासिकः' प्रथमा एकवचन और 'पूर्वस्य' षष्ठी एकवचन तथा 'अत्र', 'तु' और 'वा' ये तीनों अव्यय पद हैं। **समः सुटि** सूत्र से विधीयमान रु से पूर्ववर्ण को यह सूत्र अनुनासिक करता है।

सूत्र — अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः(8.3.4)

वृत्ति — अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात् परोऽनुस्वारागमः।

सूत्रार्थ — जिस पक्ष में अनुनासिक होता है उसको छोड़कर अन्य पक्ष में रु से पूर्व जो वर्ण उससे परे अनुस्वार का आगम होता है।

व्याख्या — यह अनुस्वार आगम विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'अनुनासिकात्' पञ्चमी एकवचन और 'परः' एवं 'अनुस्वारः' ये प्रथमा एकवचन के पद हैं। यह सूत्र जिस पक्ष में **अत्रानुनासिक पूर्वस्य तु वा** इस सूत्र से अनुनासिक नहीं होता है उस पक्ष में रु से पूर्ववर्ण के बाद अनुस्वार का आगम करता है।

सूत्र — खरवसानयोर्विसर्जनीयः(8.3.15)

वृत्ति — खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः।

सूत्रार्थ — खर् अथवा अवसान परे रहते पदान्त में विद्यमान जो रेफ उसे विसर्ग होता है।

व्याख्या — यह विसर्गविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'खरवसानयोः' सप्तमी द्विवचन तथा 'विसर्जनीयः' यह प्रथमा एकवचन का पद है। रः इस पद की अनुवृत्ति आती है।

वार्तिक — संपुङ्कानां सो वक्तव्यः।

अर्थ — सम्, पुम् और कान् शब्द सम्बन्धी विसर्ग को सकार होता है।

उदाहरण — सँस्कर्ता, संस्कर्ता।

रूपसिद्धि —

सँस्कर्ता, संस्कर्ता — सम्+स्कर्ता इस स्थिति में स्कर्ता घटक सकार सुट् सम्बन्धी होने के कारण **समः सुटि** सूत्र से सम् के मकार के स्थान पर रु आदेश हुआ। स+रु+स्कर्ता इस स्थिति में रु के उकार की इत्संज्ञा तथा लोप होकर सर्+स्कर्ता इस स्थिति में रु के पूर्ववर्ती अकार को **अत्रानुनासिक पूर्वस्य तु वा** से विकल्प से अनुनासिक हुआ। सँ+स्कर्ता इस स्थिति में खर् (स्कर्ता घटक सकार) के परे रहते पदान्त में विद्यमान सँ के रकार को **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग हुआ। सः+स्कर्ता इस स्थिति में **संपुङ्कानां सो वक्तव्यः** इस वार्तिक से सम् सम्बन्धी विसर्ग को सकार हुआ। सँस्+स्कर्ता इस स्थिति में वर्णसम्मेलन होकर सँस्कर्ता रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में **अत्रानुनासिकस्य पूर्वस्य तु वा** से रु से पूर्ववर्ण को अनुनासिक नहीं होता है, उस पक्ष में **अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः** से रु से पूर्ववर्ण के बाद अनुस्वार का आगम होकर संस्कर्ता रूप बनता है।

सूत्र — पुमः खय्यम्परे(8.3.6)

वृत्ति — अम्परे खयि पुमो रुः।

सूत्रार्थ — अम् परक खय् परे रहते पुम् के मकार के स्थान पर रु आदेश होता है।

उदाहरण — पुँस्कोकिलः, पुंस्कोकिलः।

व्याख्या — यह रुविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'पुमः' षष्ठी एकवचन व 'खयि' और 'अम्परे' ये दोनों सप्तमी एकवचन के पद हैं। अम्परक खय् परे रहने से अभिप्राय है — ऐसा खय् परे हो जिसके बाद अम् हो। खय् प्रत्याहार में वर्ग के प्रथम तथा द्वितीय वर्ण आते हैं। अम् प्रत्याहार के अन्तर्गत स्वर वर्ण, अन्तस्थ वर्ण एवं वर्ग के पञ्चम अनुनासिक वर्ण आते हैं।

रूपसिद्धि —

पुँस्कोकिलः, पुंस्कोकिलः — पुम्+कोकिल इस स्थिति में कोकिल घटक आदि ककार खय् है एवं उससे परे अम् ककारोत्तरवर्ती ओकार है अतः इस अम् परक खय् के परे रहते **पुमः खय्यम्परे** से पुम् के अन्तिम मकार के स्थान पर रु आदेश हुआ। पु+रु+कोकिल इस स्थिति में रकारोत्तरवर्ती उकार की इत्संज्ञा एवं लोप होकर पुर्+कोकिल इस स्थिति में **अत्रानुनासिकस्य पूर्वस्य तु वा** सूत्र से रु से पूर्ववर्ण को विकल्प से अनुनासिक हुआ। पुँ+कोकिल इस स्थिति में कोकिल घटक आदि ककार खर् है अतः इस खर् के परे रहते **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से र् को विसर्ग हुआ। पुः+कोकिल इस स्थिति में **सम्पुङ्कानां सो वक्तव्यः** इस वार्तिक से पुम् सम्बन्धी विसर्ग को सकार हुआ। पुँस्+कोकिल इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर पुँस्कोकिलः रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में अनुनासिक नहीं होता है, उस पक्ष में **अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः** से अनुस्वार होकर पुंस्कोकिलः रूप बनता है।

सूत्र — नश्छव्यप्रशान्(8.3.7)

वृत्ति — अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः स्यात्। न तु प्रशान् शब्दस्य।

सूत्रार्थ — अम् परक छव् परे रहते पदान्त में जो नकार उसके स्थान पर रु आदेश होता है, प्रशान् शब्द को छोड़कर।

व्याख्या — यह रुविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'नः' षष्ठी एकवचन, 'छवि' सप्तमी एकवचन और 'अप्रशान्' यह द्वितीया बहुवचन का पद है। अम्परक छव् परे रहने का अभिप्राय है — ऐसा छव् परे हो जिसके बाद में अम् हो। छव् प्रत्याहार के अन्तर्गत छ, ढ, थ, च, ट और त् ये वर्ण आते हैं।

सूत्र — विसर्जनीयस्य सः(8.3.34)

वृत्ति — खरि विसर्जनीयस्य सः स्यात्। अप्रशान् किम्? प्रशान्तनोति। पदस्येति किम्? हन्ति।

सूत्रार्थ — खर् परे रहते विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होता है।

उदाहरण — चक्रिँस्त्रायस्व, चक्रिँस्त्रायस्व।

व्याख्या — यह सकारविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'विसर्जनीयस्य' षष्ठी एकवचन तथा 'सः' यह प्रथमा एकवचन का पद है। **नश्छव्यप्रशान्** सूत्र में प्रशान् शब्द को छोड़कर कहने से प्रशान्+तनोति यहाँ पर नकार को रु नहीं होता है। पदान्त नकार को ही रु होता है ऐसा कहने से हन्ति आदि स्थलों में अपदान्त नकार के स्थान पर रु नहीं होता है।

रूपसिद्धि —

चक्रिँस्त्रायस्व, चक्रिस्त्रायस्व — चक्रिन्+त्रायस्व इस स्थिति में त्रायस्व घटक तकार छव् है एवं उससे परे अम् है अतः अम् परक छव् परे रहते पदान्त में स्थित चक्रिन् घटक नकार के स्थान पर **नश्छव्यप्रशान्** सूत्र से रु आदेश हुआ। चक्रि+रु+त्रायस्व इस स्थिति में रेफोत्तरवर्ती उकार की इत्संज्ञा व लोप होकर चक्रिर्+त्रायस्व इस स्थिति में **अत्रानुनासिकस्य पूर्वस्य तु वा** से रु से पूर्ववर्ण को अनुनासिक हुआ। चक्रिँर्+त्रायस्व इस स्थिति में त्रायस्व घटक तकार रूपी खर् परे रहते **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से रेफ को विसर्ग हुआ। चक्रिः+त्रायस्व इस स्थिति में **विसर्जनीयस्य सः** से खर् परे रहते विसर्ग के स्थान पर सकारादेश हुआ। चक्रिँस्+त्रायस्व इस स्थिति में वर्णसम्मेलन होकर चक्रिँस्त्रायस्व रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में अनुनासिक नहीं होता, उस पक्ष में **अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः** से रु से पूर्ववर्ण के बाद अनुस्वार का आगम होकर चक्रिँस्त्रायस्व रूप बनता है।

सूत्र — नृन् पे(8.3.10)

वृत्ति — नृनित्यस्य रुर्वा पे।

सूत्रार्थ — पकार परे रहते नृन् शब्द के नकार के स्थान पर विकल्प से रु आदेश होता है।

व्याख्या — यह रुविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। नृन् यह लुप्तषष्ठ्यन्त पद और पे यह सप्तमी एकवचन का पद है। नृन् के षष्ठ्यन्त होने के कारण **अलोऽन्त्यस्य** सूत्र की सहायता से अन्तिम नकार के स्थान पर आदेश होता है।

सूत्र — कुप्पोः ऋकपौ च (8.3.37)

वृत्ति — कवर्गे पवर्गे च विसर्गस्य ऋकपौ स्तः, चाद्विसर्गः।

सूत्रार्थ — कवर्ग और पवर्ग परे रहते विसर्ग के स्थान पर क्रमशः जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय होते हैं। सूत्र में चकार ग्रहण होने से पक्ष में विसर्ग भी रहता है।

उदाहरण — नृँपाहि, नृँःपाहि। नृं पाहि, नृंः पाहि। नृन्पाहि।

व्याख्या — यह जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। कुप्पोः सप्तमी एकवचन का, ऋकपौ प्रथमा द्विवचन का और च यह अव्यय पद है। यह सूत्र **विसर्जनीयस्य सः**का अपवादशास्त्र है। सूत्र में चकार ग्रहण करने के कारण जिह्वामूलीय और उपध्मानीय के साथ-साथ पक्ष में विसर्ग भी होता है। यह कार्य विकल्प से सम्भव नहीं है, क्योंकि विकल्प होने पर पक्ष में विसर्ग को सकार हो जाता, जो कि इस प्रयोग में अनिष्ट है।

रूपसिद्धि —

नृँ=पाहि, नृँःपाहि। नृं=पाहि, नृःपाहि। नृन्पाहि — नृन्+पाहि इस स्थिति में पाहि घटक आदि पकार के परे रहते **नृन् पे** सूत्र से नृन् के अन्तिम नकार के स्थान पर विकल्प से रु आदेश हुआ। नृ+रु+पाहि इस स्थिति में रेफोत्तरवर्ती उकार की इत्संज्ञा व लोप होकर नृ+र्+पाहि इस स्थिति में **अत्रानुनासिकस्य पूर्वस्य तु वाऽ**से रु सम्बन्धी रेफ से पूर्ववर्ण को विकल्प से अनुनासिक हुआ। नृँ+र्+पाहि इस स्थिति में

खरवसानयोर्विसर्जनीयः से खर् (पाहि घटक) पकार के परे रहते रेफ के स्थान पर विसर्ग आदेश हुआ। नूँः+पाहि इस स्थिति में **विसर्जनीयस्य सः** से विसर्ग के स्थान पर सकार प्राप्त है, जिसे बाधकर **कुप्पोः ऽकःपौ च** सूत्र से पवर्गसम्बन्धी (पाहि घटक) पकार के परे रहते विसर्ग के स्थान पर उपध्मानीय आदेश होकर नूँ ऽपाहि रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में विसर्ग को उपध्मानीय आदेश नहीं होता है, उस पक्ष में विसर्ग ही रह कर नूँःपाहि रूप बनता है।

जिस पक्ष में रेफ से पूर्ववर्ण को अनुनासिक नहीं होता है, उस पक्ष में **अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः** से अनुस्वार होकर उपध्मानीय सहित नूँःपाहि और विसर्ग सहित नूँःपाहि रूप बनता है।

जिस पक्ष में नृन् पेइस सूत्र से (नृन् के) नकार के स्थान पर रु आदेश नहीं होगा, उस पक्ष में नृन्पाहि रूप बनेगा।

सूत्र – तस्य परमाग्रेडितम्(8.1.2)

वृत्ति – द्विरुक्तस्य परमाग्रेडितम् स्यात्।

सूत्रार्थ – जो दो बार कहा गया हो, उनमें द्वितीय (पर वाले) रूप की आग्रेडितसंज्ञा होती है।

व्याख्या – यह आग्रेडितसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'तस्य' षष्ठी एकवचन तथा 'परम्' और 'आग्रेडितम्' ये दोनों प्रथमा एकवचन के पद हैं। जहाँ पर किसी वर्ण को द्वित्व हुआ हो तो उनमें पर वाले की आग्रेडितसंज्ञा होती है।

सूत्र – कानाग्रेडिते(8.3.12)

वृत्ति – कान्नकारस्य रुः स्यादाग्रेडिते।

सूत्रार्थ – आग्रेडितसंज्ञक शब्द परे रहते कान् शब्द के अन्तिम नकार के स्थान पर रु आदेश होता है।

उदाहरण – काँस्कान्, कांस्कान्।

व्याख्या – यह रुविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'कान्' यह लुप्त षष्ठी एकवचन तथा आग्रेडिते यह सप्तमी एकवचन का पद है। रु इस पद की अनुवृत्ति आती है। यह सूत्र कान् के नकार के स्थान पर रु आदेश करता है।

रूपसिद्धि –

काँस्कान्, कांस्कान् – कान्+कान् इस स्थिति में यहाँ कान् को दो बार कहा गया है अतः **तस्य परमाग्रेडितम्** सूत्र से द्वितीय कान् की आग्रेडितसंज्ञा हुई। जिसके फलस्वरूप **कानाग्रेडिते** सूत्र से आग्रेडितसंज्ञक कान् के परे रहते पूर्ववर्ती कान् शब्द के अन्तिम नकार के स्थान पर रु आदेश हुआ। का+रु+कान् इस स्थिति में रेफोत्तरवर्ती उकार की इत्संज्ञा होने से लोप हुआ। का+र्+कान् इस स्थिति में **अत्रानुनासिकस्य पूर्वस्य तु वा** से रु से पूर्ववर्ण को अनुनासिक हुआ। काँ+र्+कान् इस स्थिति में कान् घटक ककाररूपी खर् परे रहते रेफ को **खरवसानयोर्विसर्जनीयः**

से विसर्ग हुआ। काँः+कान् इस स्थिति में **संपुङ्कानाम् सो वक्तव्यः** इस वार्तिक से खर् परे रहते विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश हुआ। काँस्+कान् इस स्थिति में वर्णसम्मेलन होकर काँस्कान् रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में अनुनासिक नहीं होता, उस पक्ष में **अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः** से रु से पूर्ववर्ण के बाद अनुस्वार का आगम होकर काँस्कान् रूप बनता है।

सूत्र — छे च(6.1.73)

वृत्ति — ह्रस्वस्य छे तुक्।

सूत्रार्थ — छकार परे रहते ह्रस्व को तुक् आगम होता है।

उदाहरण — शिवच्छाया।

व्याख्या — यह तुक् आगम विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'छे' सप्तमी एकवचन तथा 'च' यह अव्यय पद है। तुक् के उकार एवं ककार की इत्संज्ञा व लोप होकर त् बचता है। ककार की इत्संज्ञा होने से त् कित् है अतः **आद्यन्तौ टकितौ** की सहायता से ह्रस्व के बाद होता है।

रूपसिद्धि —

शिवच्छाया — शिव+छाया इस स्थिति में शिव के अन्तिम ह्रस्व अकार से छाया घटक छकार परे रहते **आद्यन्तौ टकितौ** की सहायता से **छे च** से तुक् का आगम हुआ। शिव+तुक्+छाया इस स्थिति में उकार एवं तकार की इत्संज्ञा व लोप होकर शिव+त्+छाया इस स्थिति में **स्तोः श्चुना श्चुः** सूत्र प्राप्त है परन्तु **झलां जशोऽन्ते** इस सूत्र की दृष्टि में असिद्ध होने के कारण पहले **झलां जशोऽन्ते** से तकार के स्थान पर जश् दकार हुआ। शिव+द्+छाया इस स्थिति में **स्तोः श्चुना श्चुः** से छकार के परे रहते दकार को श्चुत्व जकार हुआ। शिव+ज्+छाया इस स्थिति में **खरि च** सूत्र से जकार को खर् परे रहते चर्त्वं चकार हुआ। शिव+च्+छाया इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर शिवच्छाया रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — पदान्ताद्वा(6.1.76)

वृत्ति — दीर्घात् पदान्तात् छे तुग्वा।

सूत्रार्थ — पदान्तदीर्घ से छकार परे रहते विकल्प से तुक् का आगम होता है।

उदाहरण — लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया।

व्याख्या — यह सूत्र तुक् आगम विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'पदान्तात्' पञ्चमी एकवचन और 'वा' यह अव्यय पद है। छे, पदान्तात् और तुक् इन पदों की अनुवृत्ति आती है। पूर्वसूत्र से ह्रस्व को तुक् का आगम नित्य प्राप्त था, इस सूत्र से दीर्घ को विकल्प से तुक् आगम होगा।

रूपसिद्धि —

लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया — लक्ष्मी+छाया इस स्थिति में लक्ष्मी इस दीर्घान्त पद से छाया घटक छकार के परे रहते **पदान्ताद्वा** सूत्र से तुक् का आगम विकल्प से हुआ। लक्ष्मी+तुक्+छाया इस स्थिति में उकार एवं तकार की इत्संज्ञा व लोप होकर

लक्ष्मी+त्+छाया इस स्थिति में स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र प्राप्त है परन्तु झलां जशोऽन्ते इस सूत्र की दृष्टि में असिद्ध होने के कारण झलां जशोऽन्ते से तकार के स्थान पर जश् दकार हुआ। लक्ष्मी+द्+छाया इस स्थिति में स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से छकार के परे रहते दकार को श्चुत्व जकार हुआ। लक्ष्मी+ज्+छाया इस स्थिति में खरि च से जकार को खर् परे रहते चर्त्त चकार हुआ। लक्ष्मी+च्+छाया इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर लक्ष्मीच्छाया रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में तुक् आगम नहीं होता उस पक्ष में लक्ष्मीछाया रूप बनता है।

बोध प्रश्न

1. समुचित विकल्प का चयन कीजिए –

i. मोऽनुस्वारः यह सूत्र है –

(क) संज्ञासूत्र (ख) विधिसूत्र (ग) परिभाषासूत्र (घ) अधिकारसूत्र

ii. अनुस्वार के स्थान में परसवर्णविधायक सूत्र है –

(क) मोऽनुस्वारः (ख) नश्चापदान्तस्य झलि (ग) अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः
(घ) हे मपरे वा

iii. त्वङ्करोषि का वैकल्पिक रूप है?

(क) त्वं करोषि (ख) त्वञ्करोषि (ग) त्वम्करोषि (घ) त्वन्करोषि

iv. नपरे नः इस सूत्र का उदाहरण है –

(क) किन् हुते (ख) किं हुते (ग) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

v. टित् आगम किसका अवयव होता है –

(क) अन्त का (ख) आदि का (ग) अन्त अच् का (घ) सभी का

2. सत्य अथवा असत्य कथन हेतु क्रमशः (✓) या (✗) चिह्न लगाएं –

i. डः सि धुट् इस सूत्र का उदाहरण सुगण्ड षष्ठः है – ()

ii. सुगण्ड षष्ठः के तीन रूप सम्भव हैं – ()

iii. तस्य परमाग्रेडितम् यह संज्ञासूत्र है – ()

iv. सञ्छम्भुः का मात्र एक ही रूप बनता है – ()

v. डम् का अभिप्राय ड्, ण् और न् होता है – ()

3. समुचित उत्तर द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए –

i. सम् के मकार के स्थान पर सुट् परे रहते आदेश होता है।

ii. सँस्कर्ता का द्वितीय रूप होता है।

iii. आद्यन्तौ टकितौ यह सूत्र है।

iv. कानाग्रेडिते इस सूत्र का उदाहरण है।

v. दो बार कहे गये में का आग्रेडित संज्ञा होती है।

अभ्यास प्रश्न

1. **ङ्णोः कुक् टुक् शरि** सूत्रस्थपदों की सङ्ख्या एवं विभक्तियाँ बताइए।
2. **ङः सि धुट्** इस सूत्र की कार्यविधि को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. टित् और कित् से क्या अभिप्राय है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
4. **पुमः खय्यम्परे** इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. खर् प्रत्याहार में कौन-कौन से वर्ण आते हैं? बताइए।

7.3 सारांश

इस इकाई में आपने हलसन्धि के **मोऽनुस्वारः**(8.3.23) सूत्र से लेकर **पदान्ताद्वा**(8.1.76) तक के सूत्रों का विधिवत् अध्ययन किया। प्रारम्भ में आपने पदान्त मकार को होने वाले परिवर्तनों को समझा। तत्पश्चात् अपदान्त नकार एवं मकार के स्थान पर होने वाले अनुस्वार आदेश को जाना। उसके बाद अनुस्वार को यय् परे रहते होने वाले परसवर्ण विधि का ज्ञान प्राप्त किया। पुनः पदान्त अनुस्वार के स्थान पर होने वाले वैकल्पिक परसवर्णविधि आदि को समझा। तत्पश्चात् मकार के स्थान पर होने वाले अनुनासिक यकार, वकार एवं लकार के स्थलों का भी अध्ययन किया। इसके बाद आगमों का क्रम प्रारम्भ हुआ। परिभाषासूत्रों की सहायता से आगम किसके अवयव एवं कहाँ पर होंगे, इसका भली-भाँति ज्ञान प्राप्त किया। आगमों में सर्वप्रथम शर् परे रहते ङकार और णकार को कुक् एवं टुक् का आगम करने वाले सूत्र एवं उनके उदाहरणों को जाना। उसके बाद ङकार एवं नकार से परे सकार को विहित धुट् आगम को जाना। उसके बाद शकार के परे होने पर पदान्त नकार को होने वाले तुक् आगम को समझा। इस तुक् आगम के कारण सन्+शम्भुः के चार वैकल्पिक रूप किस प्रकार बने? इसका भी आपने विधिवत् अध्ययन किया। तत्पश्चात् ह्रस्व से परे जो ङम् यदि वह पदान्त में हो तो उससे परे अच् को होने ङमुट् (ङुट्, णुट् और नुट्) का सम्यक् प्रकार से अध्ययन किया। इसके बाद सम् अथवा पुम् आदि के मकार के स्थान पर होने वाले रु एवं उससे सम्बन्धित कार्यों को समझा। इसके बाद खर् अथवा अवसान परे होने पर रेफ के स्थान पर विसर्ग एवं कतिपय विशेष परिस्थितियों में उस विसर्ग के स्थान पर सकार, जिह्वामूलीय एवं उपध्मानीय आदि कार्यों से सम्बद्ध प्रक्रिया को जाना। अन्त में आप्रेडितसंज्ञा एवं तत्सम्बद्ध कार्यों तथा छकार को तुक् आगम आदि का भी हमने भली-भाँति अध्ययन किया।

7.4 शब्दावली

नित्य – कृताकृतप्रसङ्गी नित्यः – कोई सूत्र, जो किसी अन्य सूत्र के प्रवृत्ति से पूर्व भी लग सकता हो तथा प्रवृत्ति के बाद भी लग सकता हो या इस प्रकार कहें कि जो कार्य सदैव हो सकता हो, वह नित्य कहलाता है। सामान्यतः अष्टाध्यायी के सूत्रों में नित्य पद रख कर के आचार्य ने विकल्प का निषेध किया है।

अवसान – **विरामोऽवसानम्** अर्थात् वर्णों के अभाव को अवसान कहते हैं अर्थात् रामस् के अन्तिम वर्ण के बाद कोई वर्ण नहीं है अर्थात् वर्णों का अभाव है। वर्णों के इसी विराम या अभाव की अवसानसंज्ञा होती है।

आगम – आगम मित्र के समान होता है।

आभ्रेडित – जो दो बार कहा गया हो, उनमें द्वितीय (पर वाले) रूप की आभ्रेडित संज्ञा होती है।

7.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी. गोरखपुर, गीताप्रेस.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या. गोविन्दाचार्य. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, चौखम्बा सुरभारती.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या. शास्त्री, धरानन्द. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या. शास्त्री, भीमसेन. लघुसिद्धान्तकौमुदी. (भाग-1-6), दिल्ली, भैमी प्रकाशन.

शास्त्री, चारुदेव. व्याकरण चन्द्रोदय. (भाग-1-3), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास.

वरदराजाचार्य, सम्पा. एवं हिन्दी सिंह, सत्यपाल. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, शिवालिक पब्लिकेशन.

Apte, V.S. *The Students' Guide to Sanskrit Composition*. Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

Kale, M.R. *Higher Sanskrit Grammar*. MLBD, Delhi.

Kanshi Ram, *Laghusiddhantkaumudi*. (Vol. 1-3). MLBD. Delhi, 2009.

Ballantyne, James R. *Laghusiddhantkaumudi*. Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

7.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

- i. (ख) विधिसूत्र, ii. (ग) अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः, iii. (क) त्वं करोषि, iv. (ग) दोनों, v. (ख) आदि का
- i. असत्य, ii. सत्य, iii. सत्य, iv. असत्य, v. सत्य
- i. रु, ii. संस्कृता, iii. परिभाषासूत्र, iv. काँस्कान्, v. द्वितीय

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 8 विसर्ग सन्धि

इकाई का रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 विसर्ग सन्धि –विसर्जनीयस्य सः सूत्र से सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् सूत्र पर्यन्त ।

8.3 सारांश

8.4 शब्दावली

8.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- विसर्गसन्धि के विसर्जनीयस्य सः(8.3.34) सूत्र से लेकर सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्(6.1.134) तक के सूत्रों के सूत्रार्थ एवं उदाहरणादि से परिचित हो सकेंगे ।
- विसर्गसन्धि के अन्तर्गत विसर्ग के स्थान पर होने वाले परिवर्तनों के स्थलों में सन्धि एवं सन्धिविच्छेद करना तथा उसकी प्रक्रिया को जान सकेंगे ।
- विसर्ग को सत्व, सकार को रुत्व, रेफ को उत्त्व एवं यकारादेश, रेफ का लोप, सु का लोप एवं छन्द में पादपूर्ति के लिए होने वाले सु के लोप आदि से परिचित हो सकेंगे ।
- त्रिपादिस्थ सूत्रों के उत्तरोत्तर असिद्धत्व के कारण उनके पूर्वापर प्रवृत्ति को भी समझ सकेंगे ।

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व आपने अच् एवं हल् सन्धि का अध्ययन किया है। इस इकाई में हम अच् अथवा हल् परे रहते विसर्ग के स्थान पर होने वाले परिवर्तनों को जानेंगे। इकाई के प्रारम्भ में विसर्ग के स्थान पर होने वाले नित्य एवं वैकल्पिक सकार के स्थलों से परिचित होंगे। तत्पश्चात् सकार को रुत्व वाले स्थलों से परिचित होंगे। सामान्यतः सकार को रुत्व एवं रु में शेष रेफ को विसर्ग होता है। परन्तु विशेष परिस्थितियों में उस रेफ के स्थान में उकार आदेश होने के पश्चात् गुण आदि कार्य होते हैं। रेफ के स्थान पर यकार आदेश एवं उस यकार का विकल्प से लोप आदि कार्य भी इस इकाई के अन्तर्गत है। इस इकाई के अन्तर्गत हम रेफ से रेफ परे होने पर रेफ का लोप होने से बनने वाले रूपों का अध्ययन करेंगे। रेफ लोप एवं उसके निमित्त रेफ के परे होने पर पूर्व वर्ण को होने वाले दीर्घ का भी अध्ययन करेंगे। इस इकाई में ही हम एतद्

एवं तद् से परे सु के लोप सम्बन्धी स्थलों का भी भलीभाँति अध्ययन करेंगे। इकाई के अन्त में छन्दों में पादों की पूर्ति के लिए सु के स्थान पर विसर्ग ना होकर उसके लोप विधान आदि का भी ज्ञान प्राप्त करेंगे।

8.2 विसर्ग सन्धि – विसर्जनीयस्य सः सूत्र से सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् सूत्र पर्यन्त।

सूत्र – विसर्जनीयस्य सः(8.3.34)

वृत्ति – खरि विसर्जनीयस्य सः स्यात्।

सूत्रार्थ – खर् परे रहते विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होता है।

उदाहरण – विष्णुस्त्राता।

व्याख्या – यह सकारविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'विसर्जनीयस्य' षष्ठी एकवचन तथा 'सः' यह प्रथमा एकवचन का पद है। पदान्त सकार को सर्वप्रथम रुत्व होता है, तत्पश्चात् रेफ को **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** सूत्र से अवसान तथा खर् परे रहते विसर्ग होता है, खर् परे रहते प्रस्तुत सूत्र से पुनः सकार हो जाता है। परन्तु पुनः सकार को रुत्व प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि रुत्वविधि की अपेक्षा सत्वविधि असिद्ध है। अतः उसे सकार दिखाई ही नहीं देता है।

रूपसिद्धि –

विष्णुस्त्राता – विष्णुः+त्राता इस स्थिति में खर् त्राता घटक आदि तकार के परे रहते विष्णुः पद के अन्तिम विसर्ग के स्थान पर **विसर्जनीयस्य सः** इस सूत्र से सकार हुआ। विष्णुस्+त्राता इस स्थिति में वर्णसम्मेलन होकर विष्णुस्त्राता रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – वा शरि(8.3.36)

वृत्ति – शरि विसर्गस्य विसर्गो वा।

सूत्रार्थ – शर् परे रहते विसर्ग के स्थान पर विकल्प से विसर्ग होता है।

उदाहरण – हरिः शेते, हरिश्शेते।

व्याख्या – यह विसर्गविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'वा' अव्यय पद और 'शरि' यह सप्तमी एकवचन का पद है। पूर्वसूत्र से खर् परे रहते विसर्ग को सकार हो रहा था। जिसका अपवाद यह सूत्र शर् (श, ष, स) के परे होने पर विकल्प से विसर्ग के स्थान पर विसर्ग करता है। जिसके फलस्वरूप एक विसर्ग युक्त रूप तथा दूसरा सकार युक्त रूप बनेगा।

रूपसिद्धि –

हरिः शेते, हरिश्शेते – हरिः+शेते इस स्थिति में खर् शेते घटक शकार के परे रहते विसर्ग के स्थान पर **विसर्जनीयस्य सः** इस सूत्र से नित्य सकार प्राप्त है, जिसे बाधकर **वा शरि** इस सूत्र से शेते घटक आदि शकार रूपी शर् के परे रहते विसर्ग के स्थान पर विकल्प से विसर्ग होकर हरिः शेते रूप सिद्ध हुआ। जिस पक्ष में विसर्ग के स्थान पर विसर्ग नहीं होता, उस पक्ष में सकार हो जाता है। हरिस्+शेते इस स्थिति

में स्तोः श्चुना श्चुः इस सूत्र से तालव्य शकार के साथ योग होने के कारण दन्त सकार के स्थान में भी श्चुत्व तालव्य सकार हुआ। हरिश्+शेते इस स्थिति में वर्णसम्मेलन होकर हरिश्शेते रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – ससजुषो रुः(8.2.66)

वृत्ति – पदान्तस्य सस्य सजुषश्च रुः स्यात्।

सूत्रार्थ – पदान्त में विद्यमान जो सकार तथा सजुष् सम्बन्धी अन्त्य षकार के स्थान पर रु आदेश होता है।

व्याख्या – यह रुविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'ससजुषोः' षष्ठी द्विवचन और 'रुः' यह प्रथमा एकवचन का पद है। इस सूत्र में भी ससजुषोः इस षष्ठ्यन्त को निर्देश करके रु कार्य किया जा रहा है, अतः अलोऽन्त्यस्य इस परिभाषा सूत्र की प्रवृत्ति होकर अन्त्य के स्थान पर विधान होगा। इस सूत्र द्वारा आदेशित रु में उकार अनुनासिक होने के कारण इत्संज्ञक है। अतः उसका लोप होकर र् शेष बचता है। र् का भी खरवसानयोर्विसर्जनीयः सूत्र से अवसान अथवा खर् परे रहते विसर्ग हो जाता है एवं क्, ख् और प्, फ परे होने पर क्रमशः जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय होता है।

सूत्र – अतो रोरप्लुतादप्लुते(6.1.113)

वृत्ति – अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्यादप्लुतेऽति।

सूत्रार्थ – अप्लुत ह्रस्व अ से परे रु के स्थान में उ आदेश होता है, अप्लुत ह्रस्व अ परे रहते।

उदाहरण – शिवोऽर्च्यः।

व्याख्या – यह उकारविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में चार पद हैं। 'अतः' पंचमी एकवचन, 'रोः' षष्ठी एकवचन, 'अप्लुतात्' पंचमी एकवचन और 'अप्लुते' यह सप्तमी एकवचन का पद है। उत् एवं अति इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है। रु के स्थान पर आदेश होने से अभिप्राय है रु सम्बन्धी रेफ के स्थान पर आदेश होना।

रूपसिद्धि –

शिवोऽर्च्यः – शिवस्+अर्च्य इस स्थिति में ससजुषो रुः सूत्र से पदान्त में विद्यमान सकार के स्थान पर रु आदेश हुआ। शिव+रु+अर्च्य इस स्थिति में रेफोत्तरवर्ती उकार की इत्संज्ञा होने के कारण लोप हुआ। शिव+र्+अर्च्य इस स्थिति में अप्लुत ह्रस्व अ (शिव घटक वकारोत्तरवर्ती अकार) से परे रु सम्बन्धी रेफ के स्थान पर आगे अर्च्य घटक अकार रूपी अप्लुत ह्रस्व अ के परे रहते अतो रोरप्लुतादप्लुते इस सूत्र से उकार हुआ। शिव+उ+अर्च्य इस स्थिति में आदगुणः से शिव घटक अकार एवं आदेशित उकार के स्थान पर गुणरूप एकादेश ओ हुआ। शिवो+अर्च्य इस स्थिति में एङ् पदान्तादति से पदान्त एङ् (शिवो घटक ओकार) से परे अर्च्य घटक ह्रस्व अ होने के कारण पूर्वपर के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश हुआ। शिवो+ऽर्च्य इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर शिवोऽर्च्यः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – हशि च(6.1.114)

वृत्ति – तथा।

सूत्रार्थ – हश् परे रहते अप्लुत अत् से परे रु के स्थान पर उत् आदेश होता है।

उदाहरण – शिवो वन्द्यः।

व्याख्या – यह उत्त्वविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'हशि' सप्तमी एकवचन तथा 'च' यह अव्यय पद है। अप्लुतात्, अतः, रो और उत् इन पदों की अनुवृत्ति आती है। हश् प्रत्याहार के अन्तर्गत वर्ग के तृतीय, चतुर्थ एवं पञ्चम वर्ण तथा अन्तस्थ वर्ण एवं हकार आते हैं।

रूपसिद्धि –

शिवो वन्द्यः – शिवस्+वन्द्य इस स्थिति में पदान्त सकार को **ससजुषो रुः** सूत्र से रुत्व हुआ। शिव+रु+वन्द्य इस स्थिति में रेफोत्तरवर्ती उकार की इत्संज्ञा व लोप होकर शिव+र्+वन्द्य इस स्थिति में हश् (वन्द्य घटक वकार) के परे रहते अप्लुत ह्रस्व अकार (शिव घटक वकारोत्तरवर्ती अकार) से परे र् के स्थान में **हशि च** सूत्र से उकार आदेश हुआ। शिव+उ+वन्द्य इस स्थिति में शिव घटक वकारोत्तरवर्ती अकार से परे अच् (उकार) होने के कारण **आद्गुणः** से पूर्वपर के स्थान पर गुणरूप एकादेश ओकार हुआ। शिव्+ओ+वन्द्य इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर शिवो वन्द्यः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि(8.3.17)

वृत्ति – एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशोऽशि। देवा इह, देवायिह। भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ता निपाताः।

सूत्रार्थ – अश् परे रहते भो, भगो, अघो तथा अपूर्वक रु के स्थान पर यकार (य) आदेश होता है।

उदाहरण – देवा इह, देवायिह।

व्याख्या – यह यकारविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। भो भगो अघो अपूर्वस्य षष्ठी एकवचन, यः प्रथमा एकवचन और अशि यह सप्तमी एकवचन का पद है। रोः इस पद की अनुवृत्ति आती है। अश् प्रत्याहार के अन्तर्गत सभी स्वर वर्ण, वर्गों के तृतीय, चतुर्थ, पंचम वर्ण एवं ह, य, व्, र् और ल् ये वर्ण आते हैं। भो, भगो और अघो ये सब सान्त निपात हैं। चादिगण में इनका पाठ होने के कारण **चादयोऽसत्वे** सूत्र से इनकी निपातसंज्ञा हुई है। निपातसंज्ञक होने के कारण **स्वरादि निपातमव्ययम्** सूत्र से ये अव्ययसंज्ञक भी होते हैं।

रूपसिद्धि –

देवा इह, देवायिह – देवास्+इह इस स्थिति में देवास् घटक पदान्त सकार के स्थान पर **ससजुषो रुः** सूत्र से रु आदेश हुआ। देवा+रु+इह इस स्थिति में रेफोत्तरवर्ती उकार की इत्संज्ञा व लोप होकर देवा+र्+इह इस स्थिति में देवा घटक

वकारोत्तरवर्ती अकार के पूर्व में र् होने के कारण उसके स्थान पर **भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि** सूत्र से अश् (इह घटक इकार) के परे रहते य् आदेश हुआ। देवा+य्+इह इस स्थिति में इह घटक इकार रूपी अश् परे रहते देवा घटक वकारोत्तरवर्ती आकार रूपी अवर्ण से परे यकार का **लोपः शाकल्यस्य** सूत्र से विकल्प से लोप होकर देवा इह रूप सिद्ध हुआ।

जिस पक्ष में **लोपः शाकल्यस्य** से लोप नहीं होता है, उस पक्ष में वर्णसम्मलेन होकर देवायिह रूप बनता है।

सूत्र — हलि सर्वेषाम्(8.3.22)

वृत्ति — भोभगोअघोअपूर्वस्य यस्य लोपः स्याद् हलि।

सूत्रार्थ — हल् परे रहते भो, भगो, अघो और अपूर्वक यकार का लोप होता है।

उदाहरण — भो देवाः। भगो नमस्ते। अघो याहि।

व्याख्या — यह यकारलोपविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'हलि' सप्तमी एकवचन और 'सर्वेषाम्' यह षष्ठी बहुवचन का पद है। यह सूत्र यकार का नित्य लोप करता है। सूत्र में सर्वेषाम् का अभिप्राय है—सभी आचार्यों के अनुसार। क्योंकि अश् परे रहते अवर्णपूर्वक यकार का लोप केवल शाकल्य आचार्य के मत में होता है, अतः यहाँ पर सर्वेषाम् पद स्पष्टता के लिए है।

रूपसिद्धि —

भो देवाः — भोस्+देवाः इस स्थिति में पदान्त सकार के स्थान में **ससजुषो रुः** सूत्र से रु आदेश हुआ। **भो+रु+देवाः** इस स्थिति में रेफोत्तरवर्ती उकार की इत्संज्ञा व लोप होकर **भो+र्+देवाः** इस स्थिति में देवा घटक आदि दकार रूपी अश् के परे रहते भो पूर्वक रेफ के स्थान पर **भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि** सूत्र से यकार आदेश हुआ। **भो+य्+देवाः** इस स्थिति में देवा घटक आदि दकार रूपी हल् के परे रहते भो पूर्वक यकार का **हलि सर्वेषाम्** सूत्र से लोप होकर भो देवाः रूप सिद्ध हुआ।

भगो नमस्ते — भगोस्+नमस्ते इस स्थिति में पदान्त सकार के स्थान में **ससजुषो रुः** सूत्र से रु आदेश हुआ। **भगो+रु+नमस्ते** इस स्थिति में रेफोत्तरवर्ती उकार की इत्संज्ञा व लोप होकर **भगो+र्+नमस्ते** इस स्थिति में नमस्ते घटक आदि नकार रूपी अश् के परे रहते भगो पूर्वक रेफ के स्थान पर **भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि** सूत्र से यकार आदेश हुआ। **भगो+य्+नमस्ते** इस स्थिति में नमस्ते घटक आदि नकार रूपी हल् के परे रहते भगो पूर्वक यकार का **हलि सर्वेषाम्** सूत्र से लोप होकर भगो नमस्ते रूप सिद्ध हुआ।

अघो याहि — अघोस्+याहि इस स्थिति में पदान्त सकार के स्थान में **ससजुषो रुः** सूत्र से रु आदेश हुआ। **अघो+रु+याहि** इस स्थिति में रेफोत्तरवर्ती उकार की इत्संज्ञा व लोप होकर **अघो+र्+याहि** इस स्थिति में याहि घटक आदि यकार रूपी अश् के परे रहते अघो पूर्वक रेफ के स्थान पर **भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि** सूत्र से यकार आदेश हुआ। **अघो+य्+याहि** इस स्थिति में याहि घटक आदि यकार रूपी हल् के परे

रहते अघो पूर्वक यकार का हलि सर्वेषाम् सूत्र से लोप होकर अघो याहि रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – रोऽसुपि(8.3.69)

वृत्ति – अहो रेफादेशो न तु सुपि।

सूत्रार्थ – सुप् परे न हो तो अहन् शब्द के अन्त्य नकार के स्थान पर रेफ (र) आदेश होता है।

उदाहरण – अहरहः। अहर्गणः।

व्याख्या – यह रुत्वविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'रः' प्रथमा एकवचन और 'असुपि' यह सप्तमी एकवचन का पद है। अहन् इस पद की अनुवृत्ति आती है। असुपि इस पद का भी अभिप्राय है सुप् प्रत्यय परे न हो तो। सुप् प्रत्यय के अन्तर्गत सु, औ, जस् आदि 21 प्रत्यय आते हैं।

रूपसिद्धि –

अहरहः – अहन्+अहन् इस स्थिति में रोऽसुपि सूत्र से सुप् प्रत्यय परे न होने के कारण अहन् के नकार के स्थान पर रेफ (र) आदेश हुआ। यह रेफादेश दोनों अहन् शब्द के अन्त्य नकार के स्थान पर होता है। अहर्+अहर् इस स्थिति में खरवसानयोर्विसर्जनीयः सूत्र से द्वितीय अहर् के अन्त्य रेफ को विसर्ग होकर अहरहः रूप सिद्ध हुआ।

अहर्गणः – अहन्+गण इस स्थिति में सुप् परे न होने के कारण रोऽसुपि सूत्र से अहन् शब्द के अन्तिम नकार के स्थान पर रेफ (र) आदेश हुआ। अहर्+गण इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर अहर्गणः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – रो रि(8.3.14)

वृत्ति – रेफस्य रेफे परे लोपः।

सूत्रार्थ – रेफ परे रहे तो रेफ का लोप होता है।

व्याख्या – यह लोपविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'रः' षष्ठी एकवचन और 'रि' यह सप्तमी एकवचन का पद है। लोपः इस पद की अनुवृत्ति आती है।

सूत्र – द्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः(6.3.111)

वृत्ति – ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः। अणः किम्? तृढः। वृढः।

सूत्रार्थ – ढकार एवं रेफ के लोप में निमित्त जो ढकार एवं रेफ, यदि वो परे हो तो पूर्व अण् को दीर्घ होता है।

उदाहरण – पुना रमते। हरी रम्यः। शम्भू राजते।

व्याख्या – यह दीर्घविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में चार पद हैं। 'द्रलोपे' सप्तमी एकवचन, 'पूर्वस्य' षष्ठी एकवचन, 'दीर्घः' प्रथमा एकवचन और 'अणः' यह षष्ठी

एकवचन का पद है। अण् प्रत्याहार से यहाँ अ, इ और उ का ही ग्रहण होता है इस कारण तृढः और वृढः आदि पदों में दीर्घ नहीं होता है।

रूपसिद्धि —

पुना रमते — पुनर्+रमते इस स्थिति में पुनर् के अन्तिम रेफ से परे रमते घटक आदि रेफ है अतः **रो रि** सूत्र से पुनर् घटक अन्तिम रेफ का लोप हुआ। पुन+रमते इस स्थिति में रेफ के लोपनिमित्तक रमते घटक रेफ के परे रहते **द्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** सूत्र से पुन के नकारोत्तरवर्ती अकार को दीर्घ आकार होकर पुना रमते रूप सिद्ध हुआ।

हरी रम्यः — हरिर्+रम्यः इस स्थिति में रम्यः घटक रेफ के परे रहते हरिर् के अन्तिम रेफ का **रो रि** सूत्र से लोप हुआ। हरि+रम्यः इस स्थिति में रेफ के लोपनिमित्तक रम्यः घटक रेफ के परे रहते **द्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** सूत्र से हरि घटक रेफोत्तरवर्ती इकार को दीर्घ ईकार होकर हरी रम्यः रूप सिद्ध हुआ।

शम्भू राजते — शम्भुर्+राजते इस स्थिति में राजते घटक आदि रेफ के परे रहते **रो रि** सूत्र से शम्भुर् के अन्तिम रेफ का लोप हुआ। शम्भु+राजते इस स्थिति में रेफ के लोपनिमित्तक राजते घटक आदि रेफ के परे रहते **द्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** सूत्र से शम्भु घटक भकारोत्तरवर्ती उकार को दीर्घ ऊकार होकर शम्भू राजते रूप सिद्ध हुआ।

मनस् रथ इत्यत्र रुत्वे कृते हशि चेत्युत्वे रोरीति लोपे च प्राप्ते।

अर्थात् — मनस्+रथः इस स्थिति में सकार को रेफ होकर मनर्+रथ यह स्थिति हुई। इस स्थिति **हशि च** से रेफ को उत्त्व और **रो रि** से रेफ का लोप एक साथ प्राप्त हुआ। इन दोनों में कौन सा कार्य हो? एतदर्थ अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

सूत्र — विप्रतिषेधे परं कार्यम्(1.4.2)

वृत्ति — तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यात्। इति लोपे प्राप्ते। पूर्वत्रासिद्धमिति रोरीत्यस्यासिद्धत्वादुत्त्वमेव।

सूत्रार्थ — तुल्य (समान) बल वालों का विरोध होने पर परकार्य (बाद वाला सूत्र) प्रवृत्त होता है।

उदाहरण — मनोरथः।

व्याख्या — यह नियमसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद है। 'विप्रतिषेधे' सप्तमी एकवचन तथा 'परम्' और 'कार्यम्' ये दोनों प्रथमा एकवचन के पद हैं। यहाँ तुल्यबल का अभिप्राय समान बल है। जब दो सूत्र अन्य स्थलों में जहाँ पर एक दूसरे की प्राप्ति नहीं हो, वहाँ पर चरितार्थ (अपना-अपना कार्य कर चुके) हों तो वे परस्पर तुल्यबल वाले माने जाते हैं। यदि इन तुल्यबल वालों का विरोध हो तो अष्टाध्यायी के क्रम में जो परवर्ती सूत्र होगा, उसकी ही प्रवृत्ति होती है, यथा—मनर्+रथः यहाँ पर **हशि च** और **रो रि** इन दो सूत्रों का तुल्यबलविरोध हो रहा है। क्योंकि **हशि च** शिवो वन्द्यः आदि स्थलों में चरितार्थ है जहाँ पर **रो रि** की प्राप्ति नहीं है एवं **रो रि** सूत्र पुना रमते आदि स्थलों में चरितार्थ है, जहाँ पर **हशि च** की प्राप्ति नहीं है। अतः ये दोनों

सूत्र तुल्यबल वाले हुए। अतः प्रस्तुत सूत्र **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** यह नियम करता है कि तुल्यबलविरोध के स्थल में परकार्य हो। **रो रि** सूत्र अष्टाध्यायी में 8.3.14 पर एवं **हशि च** 6.1.11 पर पढ़ा गया है। अतः परसूत्र होने से **रो रि** द्वारा विहित कार्य रेफलोप की प्राप्ति हुई। परन्तु **हशि च** यह सपादी एवं **रो रि** यह त्रिपादी सूत्र है। जिसके कारण **पूर्वत्रासिद्धम्** इस सूत्र से त्रिपादी रेफलोप कार्य के असिद्ध होने से सपादी उत्त्व कार्य ही होगा।

रूपसिद्धि —

मनोरथः — मनस्+रथ इस स्थिति में मनस् के अन्तिम पदान्त सकार के स्थान पर **ससजुषो रुः** सूत्र से रु आदेश हुआ। मन+रु+रथ इस स्थिति में रेफोत्तरवर्ती उकार की इत्संज्ञा एवं लोप होकर मन+र्+रथ इस स्थिति में रथ घटक आदि रेफ के परे होने के कारण रु आदेश हुए र् का **रो रि** से लोप प्राप्त हुआ। साथ ही **हशि च** से रथ घटक आदि रेफ रूपी हश् परे रहते अप्लुत ह्रस्व अकार (मनर् घटक नकारोत्तरवर्ती अकार) से परे रेफ के स्थान पर उकार आदेश प्राप्त हुआ। यहाँ रेफ का लोप हो अथवा उसके स्थान पर उकार हो इस प्रकार का तुल्यबल विरोध होने पर **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** इस परिभाषासूत्र से परकार्य **रो रि** से लोपकार्य की प्राप्ति हुई। परन्तु **पूर्वत्रासिद्धम्** सूत्र की सहायता से सपादी कार्य उत्त्व के अपेक्षा त्रिपादी रेफ लोपकार्य के असिद्ध होने के कारण उत्त्व कार्य ही हुआ। मन+उ+रथ इस स्थिति में नकारोत्तरवर्ती अवर्ण से परे अच् (उकार) होने के कारण पूर्वपर के स्थान पर **आद् गुणः** से गुणरूप एकादेश ओकार हुआ। मन्+ओ+रथ इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर मनोरथः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि(6.1.132)

वृत्ति — अककारयोरेतत्तदोः सुस्तस्य लोपो हलि न तु नञ्समासे। एष विष्णुः। स शम्भुः। अकोः किम् ? एषको रुद्रः। अनञ्समासे किम् ? असः शिवः। हलि किम् ? एषोऽत्र।

सूत्रार्थ — हल् परे रहते ककार रहित एतद् और तद् सम्बन्धी सु का लोप होता है, नञ्समास को छोड़कर।

उदाहरण — एष विष्णुः। स शम्भुः।

व्याख्या — यह लोपविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में पाँच पद हैं। 'एतत्तदोः' षष्ठी द्विवचन, 'सुलोपः' प्रथमा एकवचन, 'अकोः' षष्ठी द्विवचन एवं 'अनञ्समासे' और 'हलि' ये दोनों सप्तमी एकवचन के पद हैं। हल् प्रत्याहर के अन्तर्गत सभी व्यंजनवर्ण आते हैं। ककार रहित एतद् एवं तद् सम्बन्धी सु का ही लोप होता है ऐसा कहने से एषको रुद्रः इस प्रयोग में सु का लोप नहीं हुआ। नञ् समास को छोड़कर ही एतद् एवं तद् सम्बन्धी सु का लोप होता है ऐसा विधान करने से असः शिवः में सु का लोप नहीं होता है। हल् परे रहते ही एतद् एवं तद् सम्बन्धी सु का लोप होता है, सूत्र में ऐसा विधान करने से एषोऽत्र (एषः+अत्र) यहाँ पर सु का लोप नहीं होता है।

रूपसिद्धि —

एष विष्णुः — एषस्+विष्णुः इस स्थिति में एतद् सम्बन्धी पदान्त सकार के स्थान में ससजुषो रुः इस सूत्र से विसर्ग प्राप्त था, जिसे बाधकर हल् विष्णु घटक आदि वकार के परे रहते ककार रहित एतद् सम्बन्धी सु (स्) का एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि से लोप होकर एष विष्णुः रूप सिद्ध हुआ।

स शम्भुः — सस्+शम्भुः इस स्थिति में तद् सम्बन्धी सकार के स्थान पर रुत्व प्राप्त था, जिसे बाधकर एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि से हल् शम्भु घटक आदि शकार के परे रहते तद् सम्बन्धी सु (स्) का लोप होकर स शम्भुः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र — सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्(6.1.134)

वृत्ति — स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्येत।

सूत्रार्थ — यदि केवल लोप होने से छन्द का पाद पूर्ण हो रहा हो तो अच् परे रहते भी तद् सम्बन्धी सु का लोप होता है।

उदाहरण — सेमामविद्धि प्रभृतिम्। सैष दाशरथी रामः।

व्याख्या — यह लोपविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में पाँच पद हैं। 'सः' यह सस् इस अनुकृत पद शब्द के लुप्त षष्ठी एकवचन का पद है, 'अचि' और 'लोपे' ये सप्तमी द्विवचन के, 'चेत्' यह अव्यय और 'पादपूरणम्' यह द्वितीया एकवचन का पद है। पूर्वसूत्र से तद् सम्बन्धी सु का हल् परे रहते लोप विधान था। यह सूत्र पादपूर्ति करने के लिए अच् परे रहते तद् सम्बन्धी सु का लोप करता है। श्लोक आदि के विशेष भाग को छन्द शास्त्र में पाद कहते हैं। प्रायः छन्दों के प्रत्येक पाद में मात्राएँ/वर्ण नियत होते हैं। इस सूत्र से श्लोकों के पाद में तद् शब्द प्रथमा एकवचन में हो और उसके सु के कारण पादपूर्ति नहीं होने की स्थिति में अच् परे होने पर भी उस सु का लोप हो जाता है।

प्रस्तुत सूत्र से वहीं पर अच् परे रहते सु का लोप होता है, जहाँ छन्द में पादपूर्ति के लिए कोई अन्य उपाय नहीं हों, यदि किसी अन्य उपाय से पादपूर्ति सम्भव हो तो यह लोपकार्य नहीं होता है।

रूपसिद्धि —

सेमामविद्धि प्रभृतिम् — यह ऋग्वेद 2.44.1 का मन्त्र है। यह मन्त्र निचृद् जगती छन्द में है। चार पादों के इस छन्द के प्रत्येक पाद में 12 अक्षर होते हैं। प्रस्तुत उदाहरण के प्रथम एवं द्वितीय पद सस्+इमाम् इस स्थिति में अच् परे होने के कारण अन्य सूत्रों से लोप की प्राप्ति नहीं थी, जिसके फलस्वरूप सकार को रुत्व एवं रेफ को यकार तथा उसका विकल्प से लोप हो कर स+इमाम् यह स्थिति होती। जिसके कारण जगती छन्द के प्रथम पाद में 12 के स्थान पर 13 मात्राएँ होने से छन्द में दोष होने लगता। प्रस्तुत सूत्र सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् से ऐसी ही स्थिति में पाद की पूर्ति के लिए अच् परे होने पर भी तद् सम्बन्धी सु (स्) का लोप होता है। अतः सस्+इमाम् यहाँ पर स् का लोप हुआ। स+इमाम् इस स्थिति में सकारोत्तवर्ती अवर्ण से इमाम् घटक आदि इकार रूपी अच् के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर गुणरूप एकादेश एकार हुआ।

स्+ए+माम् इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करने से सेमाम् हुआ। इस स् लोप होने के कारण यहाँ पाद की पूर्ति होकर सेमामविद्धि प्रभृतिम् रूप सिद्ध हुआ।

सैष दाशरथी रामः—यह अनुष्टुप् छन्द का उदाहरण है। अनुष्टुप् छन्द में भी चार पाद होते हैं एवं प्रत्येक पाद में आठ—आठ अक्षर होते हैं। सस्+एष इस स्थिति में एष घटक अच् के परे रहते भी पादपूर्ति के लिए **सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्** सूत्र से तद् सम्बन्धी सु (स्) का लोप हुआ। स+एष इस स्थिति में सकारोत्तरवर्ती अवर्ण से एच् एष घटक आदि एकार के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर वृद्धिरूप एकादेश ऐकार हुआ। स्+ऐ+ष इस स्थिति में वर्णसम्मेलन होकर सैष बना। इस सलोप एवं वृद्धि होने के कारण पाद की पूर्ति हुई। यदि सकार का लोप नहीं होता तो स् को रुत्व एवं रेफ को यकार तथा यकार का विकल्प से लोप होकर स एष अथवा सयेष रूप बनता जिसके कारण इस श्लोक के प्रथम पाद में १२ के स्थान पर १३ मात्राएँ हो जाती। जिससे अनुष्टुप् छन्दभङ्ग हो जाता। इस कारण से ही प्रस्तुत सूत्र से सकार का लोप होकर सैष दाशरथी रामः प्रयोग सिद्ध हुआ।

बोध प्रश्न

1. समुचित विकल्प का चयन कीजिए—

- हरिः शेते का वैकल्पिक रूप है—
(क) हरिर् शेते (ख) हरौ शेते (ग) हरिश्शेते (घ) हरिश्शेते
- विसर्जनीयस्य सः** यह सूत्र है —
(क) संज्ञासूत्र (ख) विधिसूत्र (ग) परिभाषासूत्र (घ) अधिकारसूत्र
- रुत्वविधायक सूत्र है —
(क) विसर्जनीयस्य सः (ख) ससजुषो रुः (ग) रो रि (घ) हशि च
- शिवोऽर्च्यः का विच्छेद होता है —
(क) शिव+ऋचः (ख) शिवा+ऋच्यः (ग) शिवस्+आर्च्यः (घ) शिवस्+अर्च्यः
- निम्नलिखित में से निपातसंज्ञक है —
(क) भोस् (ख) भगोस् (ग) अघोस् (घ) सभी

2. सत्य अथवा असत्य कथन हेतु क्रमशः सही (✓) या गलत (×) का चिह्न लगाएं —

- शिवोऽर्च्यः **हशि च** इस सूत्र का उदाहरण है— ()
- हरिः शेते के दो रूप सम्भव हैं— ()
- सुप् प्रत्याहार के अन्तर्गत 21 प्रत्यय आते हैं— ()
- रेफ परे रहते रेफ का लोप नहीं होता है— ()
- तद् एतद् से परे सु का लोप सम्भव नहीं है— ()

3. समुचित उत्तर द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए —

- शर् परे रहते विसर्ग को विसर्ग आदेश होता है।

- ii. सजुष् के अन्तिम षकार के स्थान में होता है।
- iii. विप्रतिषेधे परं कार्यम्..... सूत्र है।
- iv. रो रि का उदाहरण है।
- v. पादपूर्ति के लिए लोप होता है।

अभ्यास प्रश्न

1. भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि सूत्रस्थ पदों की सङ्ख्या एवं विभक्तियाँ बताइए।
2. विप्रतिषेधे परं कार्यम् इस सूत्र की कार्यविधि को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. ढ्रलोप क्या है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
4. सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. हश् प्रत्याहार में कौन-कौन से वर्ण आते हैं? बताइए।

8.3 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने सन्धि के समस्त प्रकरणों का सम्यक् प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर लिया। सन्धिप्रकरण की पाँच इकाईयों में से यह अन्तिम पाँचवीं इकाई है। इसके अन्तर्गत आप लघुसिद्धान्तकौमुदी के विसर्गसन्धि प्रकरण का अध्ययन किया। पिछली चौथी इकाई में भी आपने सामान्य रूप से जाना था कि पदान्त में दन्त सकार को रुत्व एवं उस रुत्व सम्बन्धी रेफ को अवसान एवं खर् परे हो तो विसर्ग हो जाता है। इस इकाई में हमने सर्वप्रथम विसर्ग के स्थान पर सकारादेश वाले स्थलों से परिचय प्राप्त किया। तत्पश्चात् विसर्ग के स्थानी रेफ के स्थान पर होने वाले आदेशों का ज्ञान प्राप्त किया। रेफ के लोप के उदाहरणों को भी जाना एवं उस रेफ लोप के निमित्त के परे होने पर पूर्ववर्ण को दीर्घ होकर बनने वाले रूपों का भी भली-भाँति अध्ययन किया। इस इकाई के अन्त में विसर्ग निमित्तक रेफ एवं रेफ निमित्तक सकार के लोप वाले स्थलों से भी परिचित हुए। भाषा में विसर्गसन्धि का बहुत महत्व है, क्योंकि जिन स्थलों में विसर्ग का लोप हुआ रहता है या फिर उत्वादि होकर गुण हुआ रहता है, इस सन्धि के ज्ञान के बिना आप संशय में पड़ जाते हैं।

8.4 शब्दावली

विप्रतिषेध — अन्यत्रान्यत्रलब्धावकाशयोरेकत्रप्राप्तिस्तुल्यबलविरोधः अर्थात् भिन्न-भिन्न स्थलों पर अपना-अपना कार्य कर चुके दो सूत्र यदि कहीं एक साथ कार्य करने हेतु प्रवृत्त (उपस्थित) हो जाएं तो उनमें परस्पर तुल्यबलविरोध माना जाता है। यदि इस प्रकार के तुल्यबलविरोध का प्रसङ्ग हो तो विप्रतिषेधे परं कार्यम् इस परिभाषासूत्र के द्वारा यह व्यवस्था की जाती है कि अष्टाध्यायी के क्रम में जो परवर्ती सूत्र होगा, उसकी ही प्रवृत्ति होगी।

सम्यक् — भली-भाँति।

8.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी. गोरखपुर, गीताप्रेस.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या. गोविन्दाचार्य. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, चौखम्भा सुरभारती.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या. शास्त्री, धरानन्द. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या. शास्त्री, भीमसेन. लघुसिद्धान्तकौमुदी. (भाग-1-6), दिल्ली, भैमी प्रकाशन.

शास्त्री, चारुदेव. व्याकरण चन्द्रोदय. (भाग-1-3), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास.

वरदराजाचार्य, सम्पा. एवं हिन्दी सिंह, सत्यपाल. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, शिवालिक पब्लिकेशन.

Apte, V.S. *The Students' Guide to Sanskrit Composition*. Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

Kale, M.R. *Higher Sanskrit Grammar*. MLBD, Delhi.

Kanshi Ram, *Laghusiddhantkaumudi*. (Vol. 1-3). MLBD. Delhi, 2009.

Ballantyne, James R. *Laghusiddhantkaumudi*. Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

8.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

- i. (घ) हरिश्चोते, ii. (ख) विधिसूत्र, iii. (ख) ससजुषो रुः, iv. (घ) शिवस्+अर्च्यः, v. (घ) सभी।
- i. असत्य, ii. सत्य, iii. सत्य, iv. असत्य, v. असत्य।
- i. विकल्प से, ii. रु आदेश, iii. नियमसूत्र, iv. पुना रमते, v. सु का।

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

